ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०



प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री-भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस



प्रथम संस्करण
१९५५ ई०
मूल्य ढाई रुपया



मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, बनारस

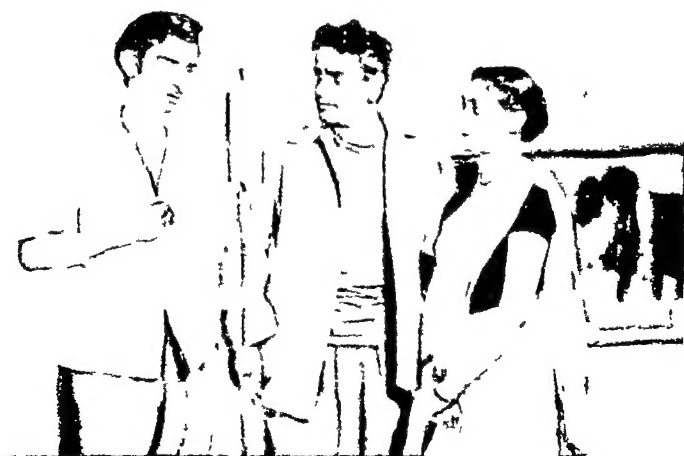
डा० विश्वनाथप्रसाद
एम० ए०, पी-एच० डी० (लन्दन)

को

सादर



अभिनेता एक नाटक प्रसारित करते हुए



अपनी पार्टीके दो सदस्योंके साथ अभिनेता पृथ्वीराज कपूर एक नाटक प्रसारित कर रहे हैं। पीछे प्रस्तुतकर्त्ताका छोटा कमरा दिखाई पड रहा है।

विषय-सूची

परिशिष्ट



अपनी बात

सन् १९४८ की बात है। पटनामे नया-नया रेडियो-स्टेशन खुला था। अभिव्यक्तिके इस नये माध्यमकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। रेडियो-सेट पर अपनी रचना और नाम सुननेकी मनमे तीव्र आकाक्षा जगी। सोचा, नाटक लिखूं, लेकिन सहसा समझ न सका कि रेडियो-नाटक लिखनेका ढग क्या है। हिन्दीमे कोई पुस्तक न थी, जिससे इस दिशामे सहायता मिलती, और अपने यहांके अन्य लेखकोंके लिए भी यह माध्यम नया ही था। फलत मुझे इस विषय पर लिखित अंग्रेजी पुस्तकोंकी शरण लेनी पडी। मैं समझता हूँ, इतने दिनों बाद भी स्थितिमे परिवर्त्तन नहीं हुआ है। अभी भी हिन्दीमे कोई ऐसी पुस्तक नही है, जो रेडियो-नाटक लिखनेके आकाक्षी व्यक्तियोको उचित मार्ग बतला सके। अनेक लेखकोसे बात-चीतके प्रसगमे भी मैंने यह अनुभव किया है कि वे रेडियो-नाटक लिखना चाहते है, पर पथ-प्रदर्शनके अभावमे नही लिख पाते। यदि हिन्दीमे इस विषय पर कोई पुस्तक होती, तो उन्हे पर्याप्त सहायता मिलती। यह पुस्तक इसी दृष्टिसे लिखी गयी है।

पुस्तकको सब प्रकारसे उपयोगी एव व्यावहारिक बनानेका प्रयत्न किया गया है। अंग्रेजीमे इस विषयपर जो उपलब्ध सामग्री है, उसका पूरा उपयोग किया गया है। ऐसा करना उचित भी था, क्योकि अंग्रेजीमे रेडियो-नाटककी टेकनीकका काफी विकास हो चुका है। पुस्तकको व्यावहारिक बनानेके लिए मैंने लगभग आठ वर्षोंके अपने रेडियो-नाटक-लेखन के अनुभवका भी उपयोग किया है।

तथ्योको स्पष्ट करनेके लिए पुस्तकमे पर्याप्त उदाहरण दिये गये हैं। कुछ उदाहरणोको एकसे अधिक बार देनेकी आवश्यकता पडी है, पर पुनरुक्तिसे बचनेके लिए ऐसा नहीं किया गया है, केवल आगे आनेवाले

उदाहरणोका निर्देश कर दिया गया है। अत पाठकोकी सुविधाके लिए यह उल्लेख कर देना उचित ज्ञात होता है कि पृष्ठ ३० मे निर्दिष्ट उदाहरण पृष्ठ १०६ मे और पृष्ठ ३१ मे निर्दिष्ट तीन उदाहरण क्रमश पृष्ठ ८६-६१, ५२ और ६५-६६ मे दिये गये है। इसी प्रकार ३२, ३८, ४१, ५२, ५४ और ५७ पृष्ठोमें निर्दिष्ट उदाहरण क्रमश पृष्ठ ४६, ७७, १०४, ७८, ७८ और ११४-११५ मे देखे जा सकते है। उदाहरण लेखकने अपनी ही रचनाओंसे दिये है, जहाँ अन्य किसी लेखककी रचनासे उदाहरण दिया गया है, वहाँ उसका उल्लेख कर दिया गया है।

पाठक रेडियो-नाटकके स्वरूप-विधान एव प्रकारोसे भलीभाँति परिचित हो सकें यह सोचकर मैंने परिशिष्टमे अपने दो रेडियो-नाटक, 'सघर्ष' और 'वे अभी भी क्वाँरी है', अपने सपूर्ण रूपमे दे दिये है। मै यह कहनेकी धृष्टता नही करता कि ये नाटक आदर्श है, पर इतना अवश्य है कि ये केवल रेडियोको दृष्टिमे रखकर लिखे गये है, और रेडियो पर सफल रहे है। यो तो रेडियो-नाटकका कोई एक निश्चित स्वरूप नही है (उसी तरह, जिस तरह कहानी और उपन्यासका कोई एक निश्चित स्वरूप नही है) वह प्रत्येक लेखककी प्रतिभा और सूझके अनुसार बदलता रहता है, मुझे आशा है कि परिशिष्टके नाटकोसे पाठकोको रेडियो-नाटकका स्वरूप-विधान समझनेमें सहायता मिलेगी।

नाटक एक सृजनात्मक कृति है, और प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार ही उसकी रचना कर सकता है। कोई पुस्तक वह प्रतिभा नही दे सकती। पर सृजनात्मक प्रतिभाके रहते हुए भी साहित्यके कहानी, उपन्यास नाटक आदिके कला-विधानसे परिचित होना आवश्यक है, तभी सफल कला-कृतियोका निर्माण हो सकेगा। प्रस्तुत पुस्तक उन्ही व्यक्तियोंके लिए है, जिनमें नाटकके लिए अपेक्षित प्रतिभा पहलेसे है, और जो रेडियो-नाटकके कला-विधानसे परिचित होना चाहते है।

आशा है, रेडियो-नाटक लिखनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्ति तो इस

पुस्तकसे लाभ उठाएँगे ही, हिन्दीके सामान्य पाठकोमे भी इससे रेडियो-नाटकोके प्रति अभिरुचि जगेगी।

जिन पुस्तकोसे मैंने सहायता ली है और जिनके उद्धरण मैंने पुस्तकमे दिये है, उनके लेखकोके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

आल इडिया-रेडियोके सौजन्यसे स्टूडियोके जो चित्र प्राप्त हुए है, उनके लिए अधिकारियोको धन्यवाद।

लोकोदय ग्रथमालाके सपादक आदरणीय बन्धु श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन का बहुत आभार मानता हूँ कि इनसे प्रकाशक-जैसा नही, एक अग्रज-जैसा स्नेह एव परामर्श पाता रहा हूँ।

मैंने यह उचित समझा कि प्रस्तुत पुस्तककी प्रस्तावना किसी रेडियो-नाटच-विशेषज्ञसे ही लिखवायी जाय। इस सबधमे मेरे सामने पहला नाम आल इडिया रेडियो दिल्लीके प्रसिद्ध नाटच-निर्देशक श्री एस० एस० एस० ठाकुर (जिन्होंने अब तक विभिन्न प्रकारके सैकडो रेडियो-नाटक पढे है और प्रोड्यूस किये है, जिन्हे रेडियो-नाटचका सैद्धान्तिक ही नही, व्यावहारिक अनुभव प्राप्त है) का आया, पर मेरे लिए वे बिलकुल अपरिचित थे। अत मैंने उनके पास लिखा—'मैं सोचता हूँ कि प्रसिद्ध रेडियो-नाट्य-विशेषज्ञोके अनुभवो पर आधारित यह पुस्तक रेडियो-नाट्य-शिल्पसे परिचय प्राप्त करनेकी इच्छा रखने-वालोके लिए उपयोगी होनी चाहिए, पर मैं चाहता हूँ कि आप इसे स्वय देख ले कि जिस उद्देश्यसे यह लिखी गयी है, उसकी पूर्ति कहाँतक करेगी, और यदि आप इससे सतुष्ट हो, तभी प्रस्तावना लिखे।" मुझे प्रसन्नता है कि ठाकुर साहबने प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया और अपने व्यस्त जीवनसे कुछ समय निकाल कर प्रस्तावना लिखनेकी जो कृपा की है, इसके लिए हृदयसे उनका हार्दिक आभार स्वीकार करता हूँ।

पटना]

—सिद्धनाथकुमार

प्रस्तावना

मुझसे जब इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखनेको कहा गया, तो मुझे "लिखना" शब्दसे बड़ी घबराहट हुई, क्योंकि मैंने लिखनेका काम बहुत कम किया है। मैं तो बोलता हूँ और उससे भी अधिक सुनता हूँ। यह अत्युक्ति न होगी, यदि मैं कहूँ कि रेडियो-नाटकसे सबन्धित हर चीजमे बोलने और सुननेकी एक अलग महत्ता है।

वैसे बोलना और सुनना तो किसको नही आता, पर मैंने रेडियोमें रहकर यही सीखा है कि ऐसा बोलो, जिसे बहुत-से लोग समझे, जिससे बहुत से लोगोका फायदा हो और बहुत-से लोगोका मनोरजन। सरल, सर्वहित की सरस बात होनी चाहिये।

रेडियोका आविष्कार मौलिक शब्दकी शक्ति-प्रदर्शनका एक बहुत बडा माध्यम है तो हमें मुखसे बोली हुई बातकी ओर हाथसे लिखी हुई बातकी अपेक्षा अधिक ध्यान देना होगा। शायद ही ऐसा कोई रेडियो-नाटक होगा, जिसकी शैली पर उपर्युक्त कथनको सामने रखकर विचार किया गया हो।

मुखसे बोली हुई बात ही क्या, अमौखिक, सगीतमय, अथवा सगीत-रहित ध्वनियाँ एक बहुत अच्छे लिखे हुए कथोपकथनसे अधिक प्रभावशाली हो सकती है।

एक विराम अपने सही स्थान पर, एक पूरे पैराग्राफसे अधिक सार्थक हो सकता है।

डी० सी० पी० (ड्रामा कन्ट्रोल पैनल) मे यह क्षमता है कि वह स्वय ध्वनिके सहारे एक ऐसा चित्र, दृश्य और भाव पैदा कर सकता है, जो एक पूरे पृष्ठ पर लिखे हुए शब्दोसे कही अधिक प्रभावोत्पादक होगा।

रेडियो-नाट्य-शिल्प तभी निखरेगा, जब हम रेडियोके असली तत्त्व को ग्रहण कर डी० सी० पी०, अभिनेता, सगीतमय और सगीतरहित ध्वनियाँ, यथास्थान विरामकी सार्थकता आदि अगोंको सामने रखकर रेडियो-नाटककी कल्पना करेंगे।

श्री सिद्धनाथकुमारजीका यह प्रयास वास्तवमें सराहनीय है। उन्होंने रेडियो-नाट्य-शिल्पकी छोटी-से-छोटी और बडी-से-बडी बातका अच्छा विवेचन किया है।

आशा है, वह आगे भी इस क्षेत्रकी अनेकानेक और बाते भी जनता तक पहुँचाते रहेंगे।

नई दिल्ली]

—एस० एस० एस० ठाकुर
निर्देशक, आकाशवाणी, दिल्ली

रेडियो–नाट्य-शिल्प

०

ध्वनि-नाटक या रेडियो-नाटक ?

रेडियो-नाटकका माध्यम हमारे लिए अभी नया है, इसके लिए कोई ऐसा नाम भी निश्चित नही हो सका है, जो उचित एव सर्वमान्य हो। रेडियो-नाटकके कला-विधानपर प्रकाश डालनेके पहले नामकरणके प्रश्नपर विचार कर लेना आवश्यक लगता है। भिन्न-भिन्न विद्वानोने इसे भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। डा० रामकुमार वर्माने इसे 'ध्वनि-नाटक' कहा है ('आजकल', अगस्त १९५१)। प्रो० रामचरण महेन्द्र इसे 'ध्वनि-एकाकी' कहते हैं ('कल्पना', दिसम्बर १९५२)। अधिक लोगोने इन्ही दोनो नामोके व्यवहार किये है, यो कुछ लोग इसे रेडियो-नाटक भी कहते है। हमे एक-एक करके इन तीनो नामोपर विचार कर लेना चाहिए।

'ध्वनि-नाटक'मे प्रयुक्त 'ध्वनि' शब्द अनेकार्य है। 'सक्षिप्त हिंदी-शब्दसागर'मे इसके चार अर्थ दिये हुए है, जो इस प्रकार है—'१ वह विषय, जिसका ग्रहण श्रवणेन्द्रियसे हो। शब्द। नाद। आवाज। २ शब्दका स्फोट। आवाजकी गूंज। लय। ३ वह काव्य जिसमे वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो। ४ आशय। गूढ अर्थ। मतलब।' इसलिए 'ध्वनि-नाटक'से रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटकका बोध नही होता। यह सत्य है कि रेडियोसे प्रसारित किये जानेवाले नाटकोमे शब्द, आवाज अथवा ध्वनिकी ही प्रधानता होती है, पर रेडियो-नाटकके सभी उपकरण इसके अन्तर्गत नही आ पाते। सगीत, जो रेडियो-नाटकका एक प्रधान साधन है, की व्यजना 'ध्वनि'से नही होती। सच कहा जाय, तो ध्वनि या आवाज (Sound-effect) रेडियो-नाटकका केवल एक उपकरण है। अत. रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटकको 'ध्वनि-नाटक' कहना उचित नही जँचता।

'ध्वनि-एकाकी' नाम तो रेडियो-नाटकोके है। सबधमे भ्रम उत्पन्न कर देता है। यह भ्रम बहुत लोगोमे है। लोग समझते है कि रेडियोसे

प्रसारित किये जानेवाले नाटक एकाकी नाटकोकी ही श्रेणीके होते है। स्वय डा० रामकुमार वर्माकी इस पक्तिसे यही ध्वनि निकलती है—'रग-मचपर अभिनीत होनेवाले एकाकी नाटकोमे और रेडियो-द्वारा प्रस्तुत एकाकी नाटकोमे वडा भेद है।' ('आजकल', अगस्त १९५१) पर रेडियो-नाटकोमे अकका प्रश्न ही नही उठता। उनमे आवश्यकतानुसार छोटे-वडे अनेक दृश्य होते है, यो कभी-कभी एक ही दृश्यमे समूचा नाटक समाप्त हो जाता है, जैसे स्वय डा० वर्माका 'आँखोका आकाश' है। एकाकी नाटक के लिए यह कहना सत्य है कि 'कार्य-सकलन, काल-सकलन और स्थान-सकलनकी मर्यादासे उसमे एक सम्पूर्ण कार्य एक ही अवधिमे एक ही स्थानपर होना आवश्यक है। . यही एकाकीकारका कौशल है कि विना समयका विस्तार वढाये और विना स्थानोको वदले, वह कौतूहलका सचय कर मनोविज्ञानमे क्रान्ति उपस्थित कर दे।' पर रेडियो-नाटकके सवधमे यह आवश्यक नही है। यो, कुछ रेडियो-नाटकोमे सकलन-त्रयकी रक्षा भले ही की गई हो, पर रेडियो-नाटकका यह कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं है। अन्तमें दिये गये नाटक 'वे अभी भी क्वाँरी है' मे सरलतासे देखा जा सकता है कि उसमे सकलन-त्रयका कोई वधन नही माना गया है, फिर भी प्रसारित होनेपर उसमें काफी प्रभावोत्पादकता रही है। तात्पर्य यह कि रेडियोके लिए लिखित नाटकको 'ध्वनि-एकाकी' भी नही कहा जा सकता।

रेडियोसे प्रसारित किये जानेवाले नाटकोके लिए एक ही नाम उचित है—'रेडियो-नाटक'। 'रेडियो' शब्द हिंदीके लिए अपना शब्द हो चुका है, सवके लिए यह वोधगम्य भी है। इसके अन्तर्गत रेडियोके लिए लिखित सव प्रकारके नाटक आ जाते है। अत इसी नामका व्यवहार किया जाना चाहिए।

रंगमंच-नाटक और रेडियो-नाटक

रेडियो-नाटक लिखनेके पहले रेडियो-नाटक लिखनेके आकांक्षी लेखकोंके मनमे यह बात अच्छी तरह बैठ जानी चाहिए कि रेडियो-नाटक रगमचके नाटकोसे बिल्कुल भिन्न है, दोनोके लिखनेकी प्रणाली अलग-अलग है। रेडियो-नाटकके सबधमे सामान्य धारणा यह है कि वह रगमचके नाटकोका ही एक परिवर्त्तित रूप है। ऐसी धारणा उत्पन्न करनेमे अपने यहाँके प्रसिद्ध लेखकोंका भी हाथ है। वे रगमचके लिए लिखे हुए अपने नाटकोमे थोडा परिवर्त्तन कर उन्हे रेडियो-स्टेशनोमे प्रसारित करनेके लिए दे देते है, अथवा रेडियोसे प्रसारित नाटकोमे स्थान-स्थानपर रगमचके उपयुक्त प्रतिन्यास लिखकर उन्हे पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित कराते है। इससे उन्हे आर्थिक दृष्टिसे लाभ अवश्य होता है, पर रेडियो-नाटकके सबधमे सामान्य पाठकोकी धारणा सही नही बन पाती। कुछ लेखक भी ऐसे है, जो स्वय इस धारणाके विश्वासी है। उदाहरणके लिए, एक प्रसिद्ध नाटककारके नाटक-सग्रहकी भूमिकामे एक पक्ति इस प्रकार है—'मेरा विश्वास है, जैसे स्टेजके नाटक कुछ हेर-फेरके साथ रेडियोके उपयुक्त बनाये जा सकते है, वैसे ही ध्वनि-रूपकोको भी आवश्यकता होनेपर स्टेज-नाटक बनाया जा सकता है।' यह बात कुछ नाटकोके लिए भले ही सही हो, पर जो नाटक रेडियोको ही दृष्टिमे रखकर लिखे जाते है, उनपर नही लागू होगी। अन्तमे दिये गये नाटकोको, विशेष रूपसे 'वे अभी भी क्वाँरी है' को पढकर आप सोच सकते है कि क्या उन्हे रगमचपर प्रदर्शित किया जा सकता है। सच बात यह है कि रेडियो-नाटककी कला एक स्वतन्त्र कला है। उसे जाननेके लिए सबसे पहले हमे समझ लेना चाहिए कि रगमचके नाटकोसे रेडियो-नाटक किन-किन बातोमे भिन्न है।

•

रगमच-नाटक दृश्य और श्रव्य दोनो है। उसके प्रभावको हम आँख और कान दोनोके द्वारा ग्रहण करते है। दृश्य होनेके कारण उसकी अभि-

व्यक्तिके अनेक साधन है। रंगमंच-नाटकोंमें वातावरण एवं परिस्थितियों-को सूचित करनेवाले दृश्योंका उल्लेख करना पड़ता है। रंगमंचपर काममें आनेवाली वस्तुओंका भी निर्देश रहता है। पात्रोंकी रूप-रेखा, अवस्था, शारीरिक गठन, वस्त्र-विन्यास, अस्त्र-शस्त्र, अलंकार आदि द्वारा उनके देश, काल एवं व्यक्तित्वका परिचय मिलता है। पात्रोंके घूमने-फिरने, उठने-बैठने आदि कार्य एवं भाव-भंगिमा, मुद्रा आदि भी घटनाओं एवं भावनाओंको प्रकट करनेके बहुत बड़े साधन हैं। फिल्मोंमें तो ये साधन बड़े ही प्रभावशाली होते हैं। रेडियो-नाटकोंमें इन सभी साधनोंका अभाव है। यहाँ इन सबकी पूर्ति श्रव्य साधनोंसे ही करनी पड़ती है। इनके अति-रिक्त रंगमंच तथा सिनेमाके बहुत-से नाटकोंकी शांतिसे भी व्यंजना होती है। भासके नाटकोंके संबंधमें एक अंग्रेज आलोचकने लिखा है—'Its silence speaks' (इसका मौन भी बोलता है)। इसका अनुभव हमें उन फिल्मोंको भी देखते समय हमेशा ही होता है, जिनमें बिना किसी कथनोपकथनके कितने चलचित्र आँखोंके सामनेसे निकल जाते हैं। घट-नाओंकी गति एवं भावनाओंकी अभिव्यक्ति वहाँ केवल दृश्यों, पात्रोंकी मुद्राओं तथा पृष्ठभूमि-संगीतके द्वारा ही स्पष्ट हो जाती है। रेडियो-नाटक-के लिए यह असंभव है, क्योंकि इसमें दृश्य साधन है ही नहीं।

रंगमंचके नाटकोंमें और भी अनेक सुविधाएँ हैं। वहाँ एक ही दृश्यमें रंगमंचपर कई पात्र आ सकते हैं, पर दर्शकोंको उन्हें पहचाननेमें कोई कठि-नाई नहीं होगी। दर्शक यह भी हमेशा देखते और समझते रहते हैं कि कौन पात्र कब रंगमंचसे बाहर गया और कब रंगमंचपर लौटा। इन क्रियाओंको शब्दोंमें व्यक्त करनेकी आवश्यकता नहीं होती। रेडियो-नाटकोंमें यदि इन बातोंपर ध्यान न दिया जाय, तो श्रोताओंके लिए उन्हें समझना ही असंभव हो जाय।

एक और दृष्टिसे देखें, तो ज्ञात होगा कि रेडियो-नाटककी कला कितनी कठिन है। लोग रंगमंचके नाटक देखने उनकी रुचिसे जाते हैं, पैसे खर्च करते हैं और तब नाटक देखने बैठते हैं। चूँकि सब लोग अपने पैसोंका पूरा

उपयोग करना चाहते है, वे शात होकर नाटक देखनेका प्रयत्न करते है। बीचमे कही कोई शोर-गुल नही होने पाता। यदि दो आदमी आपसमे बाते भी करना चाहते है, तो अगल-बगलके लोग उन्हे चुप कर देते है। तात्पर्य यह कि यदि नाटकमे कुछ नीरसता रही, तो भी दर्शक उसे देखते है। लेकिन रेडियो-नाटकके श्रोताओके लिए ऐसा कोई बधन नही है। उन्हे नाटक सुनने-के लिए कही जाना नही पडता, पैसा नही खर्च करना पडता, इसलिए नीरसता का थोडा-सा आभास मिलनेपर भी वे रेडियो-सेट बद कर देगे, अथवा मीटर बदलकर दूसरा कुछ सुनने लगेगे। साथ ही, श्रोताओकी आपसकी बातचीत, बच्चोके शोर-गुल, किसीके आने-जानेकी आवाज, किवाडकी खडखडाहट-जैसी कितनी ही चीजे है, जो बीच-बीचमे श्रोताओका ध्यान भग किया करती है। ये ही कारण है कि रेडियो-नाटककारका उत्तरदायित्व बहुत कठिन है। उसे एक क्षणके लिए नीरस नही होना है और अनेक विघ्न-बाधाओके बावजूद अपनी कृतिको सामान्य श्रोताओके लिए भी बोधगम्य बनाना है।

रेडियो-नाटकोकी तुलनामे रगमच-नाटकोको एक और सुविधा प्राप्त है। रगमचके नाटक समूहके लिए लिखे जाते है, रेडियोके नाटक व्यक्तिके लिए। समूहकी प्रतिक्रिया व्यक्तिकी प्रतिक्रियासे भिन्न होती है। समूहमे सवेदन-शक्ति अधिक होती है, वह शीघ्र ही भावावेशमे आ सकता है, उत्ते-जित हो सकता है। यदि किसी करुण दृश्यको देखकर समूहके कुछ व्यक्तियो-की आँखोमे आँसू आ जायँ, तो बहुत सभव है कि दूसरे व्यक्तियोकी आँखे भी भर आएँ। जब लोग समूहमे एक साथ बैठकर रगमचके नाटक देखते है, और पात्रोके राग-विरागोसे प्रभावित होते है, तो यह प्रभाव उनकी मुख-मुद्राओपर स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। रगमचके अभिनेता इसे देखते है, उन्हे आभास मिलता है कि वे कहाँ तक दर्शकोको प्रभावित कर सके है। अभिनेता दर्शकोकी प्रतिक्रियासे स्वय प्रभावित होते है, उन्हे अपने अभि-नयमे अधिक कुशलता बरतनेकी प्रेरणा मिलती है। लेकिन रेडियोके स्टूडियोमे कोई दर्शक नही होता, सब अभिनेता ही होते है, जो या तो एक-दूसरेको देखते है, या अपने हाथमे रखी हुई नाटककी प्रतिसे अपना अश पढते

रहते हैं । बगलके कमरेमे, शीशेकी खिडकीकी दूसरी तरफ सचालक या प्रस्तुतकर्त्ता (producer) रहता है अवश्य, पर अभिनेता समूहकी प्रतिक्रियासे वचित रह जाते है, उन्हे ज्ञात नही होता कि वे अपने श्रोताओको कहाँ तक प्रभावित कर रहे है। रेडियो-नाटककार इससे यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि जो घटनाएँ समूहको प्रभावित कर सकती है, सभव है, वे व्यक्तिको प्रभावित न करे। इसलिए उसे उन्ही विषयो और घटनाओ पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिनसे वह अपने व्यक्ति-श्रोताओको प्रभावित करनेमे समर्थ हो सके।

जहाँ रगमच-नाटकोमे इतनी सुविधाएँ है, वही उनकी कुछ सीमाएँ भी है। उनमे दृश्य-परिवर्त्तन एक समस्या है, जिससे उनमे कमसे कम दृश्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है। उनमे न कोई दृश्य बहुत छोटा हो सकता है, न कोई दृश्य बहुत बडा। लेकिन रेडियो-नाटकमे ऐसा कोई बधन नही है। इसमे तीन पक्तियोका भी दृश्य हो सकता है, और सौ पक्तियोका भी। फिल्मोमे तो यह सुविधा और भी अधिक है। उनमे दृश्य-परिवर्त्तन तो पल-पल होता रहता है। दृश्य-परिवर्त्तनकी कठिनाईके कारण रगमच-नाटकके दृश्योमे दूसरे स्थानोकी घटनाओका विवरण सलापमे ही देना पडता है। पर यदि हम आवश्यक समझे, तो रेडियो-नाटकमे दूसरे स्थानो-की घटनाओको भी प्रत्यक्ष रूपमे चित्रित कर सकते है।

रगमचमे दूसरी समस्या है पात्रोकी वेश-भूषाकी। यदि कोई पात्र पहले दृश्यमे राजकीय वस्त्राभूषण पहनकर आता है, तो दूसरे दृश्यमे हम उसे युद्धकी वेश-भूषामे नही उपस्थित कर सकते। उसे इतना अवकाश मिलना चाहिए कि वह अपना परिधान बदल सके। रेडियो-नाटकमे ऐसी कोई कठिनाई नही है। रेडियो-अभिनेता अपने साधारण कपडे पहनकर ही अभिनय करता है, वेश-भूषा उसके लिए कोई समस्या नही है। वह लगातार कई दृश्योमे बडी सरलतासे आ सकता है।

रगमच-नाटकोकी एक सीमा यह भी है कि उनमे घटनाओकी गति-शीलता बहुत कम रहती है। ऐसा सभव भी नही है, क्योकि वहाँ दृश्य-

परिवर्तन जल्दी-जल्दी नहीं किया जा सकता। पर रेडियो-नाटकोंमें गतिका प्रदर्शन बड़ी सरलतासे किया जा सकता है। फिल्मोंमें तो यह विशेषता सबसे अधिक होती है।

रंगमंचपर भीड़, घुड़दौड़, हवाई जहाज आदिके दृश्य नहीं दिखलाये जा सकते, पर रेडियोके लिए यह बहुत ही आसान काम है।

इनके अतिरिक्त रेडियो-नाटककी जो अपनी विशेषताएँ हैं, उनका उल्लेख अगले अध्यायमें किया गया है। रेडियो-नाटककी सीमाएँ और सुविधाएँ समझ लेनेके बाद हम कह सकेंगे कि रेडियो-नाटककी कला किस प्रकार एक स्वतन्त्र कला है। रेडियो-नाटककार उनकी सीमाएँ समझकर और सुविधाओंका अधिकाधिक उपयोग कर सफल रेडियो-नाटककी रचना कर सकता है।

रहते है । बगलके कमरेमे, शीशेकी खिडकीकी दूसरी तरफ सचालक या प्रस्तुतकर्त्ता (producer) रहता है अवश्य, पर अभिनेता समूहकी प्रतिक्रियासे वचित रह जाते है, उन्हे ज्ञात नही होता कि वे अपने श्रोताओको कहाँ तक प्रभावित कर रहे है । रेडियो-नाटककार इससे यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि जो घटनाएँ समूहको प्रभावित कर सकती है, सभव है, वे व्यक्तिको प्रभावित न करे । इसलिए उसे उन्ही विषयो और घटनाओ पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिनसे वह अपने व्यक्ति-श्रोताओको प्रभावित करनेमे समर्थ हो सके।

जहाँ रगमच-नाटकोमे इतनी सुविधाएँ है, वही उनकी कुछ सीमाएँ भी है । उनमे दृश्य-परिवर्त्तन एक समस्या हे, जिसमे उनमे कमसे कम दृश्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है । उनमे न कोई दृश्य वहुत छोटा हो सकता है, न कोई दृश्य वहुत वडा । लेकिन रेडियो-नाटकमे ऐसा कोई बधन नही है । इसमे तीन पक्तियोका भी दृश्य हो सकता हे, और सौ पक्तियोका भी । फिल्मोमे तो यह सुविधा और भी अधिक हे । उनमे दृश्य-परिवर्त्तन तो पल-पल होता रहता है । दृश्य-परिवर्त्तनकी कठिनाईके कारण रगमच-नाटकके दृश्योमे दूसरे स्थानोकी घटनाओका विवरण सलापमे ही देना पडता है । पर यदि हम आवश्यक समझे, तो रेडियो-नाटकमे दूसरे स्थानो-की घटनाओको भी प्रत्यक्ष रूपमे चित्रित कर सकते है ।

रगमचमे दूसरी समस्या है पात्रोकी वेश-भूपाकी । यदि कोई पात्र पहले दृश्यमे राजकीय वस्त्राभूषण पहनकर आता है, तो दूसरे दृश्यमे हम उसे युद्धकी वेश-भूपामे नही उपस्थित कर सकते । उसे इतना अवकाश मिलना चाहिए कि वह अपना परिधान बदल सके । रेडियो-नाटकमे ऐसी कोई कठिनाई नही है । रेडियो-अभिनेता अपने साधारण कपडे पहनकर ही अभिनय करता है, वेश-भूषा उसके लिए कोई समस्या नही है । वह लगातार कई दृश्योमे वडी सरलतासे आ सकता है ।

रगमच-नाटकोकी एक सीमा यह भी है कि उनमे घटनाओकी गति-शीलता वहुत कम रहती है । ऐसा सभव भी नही है, क्योकि वहाँ दृश्य-

परिवर्तन जल्दी-जल्दी नहीं किया जा सकता। पर रेडियो-नाटकमें समयका प्रसंग बड़ी सरलतासे लिया जा सकता है। जिससे नाटककी विविधता सबसे अधिक होती है।

रंगमंचपर भीड़, घुड़दौड़, लड़ाई-झगड़ा आदिके दृश्य नहीं दिखाये जा सकते, पर रेडियोके लिए यह काम भी आसान होता है।

इनके अतिरिक्त रेडियो-नाटककी जो अपनी विशेषताएँ हैं, उनका उल्लेख अगले अध्यायमें किया गया है। रेडियो-नाटककी सीमाएँ और सुविधाएँ समझ लेनेके बाद हम कह सकेंगे कि रेडियो-नाटक-कला किस प्रकार एक स्वतन्त्र कला है। रेडियो-नाटककार उनकी सीमाएँ समझकर और सुविधाओंका अधिकाधिक उपयोग कर सफल रेडियो-नाटककी रचना कर सकता है।

रेडियो-नाटक : सीमाएँ और संभावनाएँ

जैसा कि पिछले अध्यायमे हम देख चुके है, रेडियो-नाटकके उपकरण बहुत परिमित है, और इसी कारण इसकी कुछ अपनी सीमाएँ है। यह केवल श्रव्य है, श्रव्य-साधनोंके द्वारा ही नाटककारको अपनी कृतिका निर्माण करना पडता है। रेडियो-नाटककार जानता है कि कान आँखोका काम नही कर सकते, फिर भी वह सभी दृश्योको अपने श्रव्य साधनोंमे उपस्थित करनेका प्रयत्न करता है। बहुत-से ऐसे भी दृश्य है, जिन्हे चित्रित करनेमे वह अपनेको असमर्थ पाता है। दूसरी बात यह है कि रेडियो-नाटकका समय भी सीमित रहता है। सामान्यत रेडियो-नाटक पद्रह, तीस या पैतालीस मिनट अथवा एक घटेके लिए लिखे जाते है। इस सीमित अवधिमे ही नाटककी सभी अवस्थाओको उपस्थित करना पडता है। इन सीमाओंके रहते हुए भी रेडियो-नाटककी जो अपनी विशेषताएँ है, वे अन्य नाट्य-स्वरूपो की तुलनामे बडी स्पष्टतासे परिलक्षित होती है। फिल्म-नाटक तो अधिक साधन एव शक्ति-सम्पन्न होते है, उनमे ये विशेषताएँ मिल सकती है, पर यहा ये सामान्य रगमच-नाटकोंकी तुलनामे उपस्थित की जा रही है।

रेडियोपर फैंटेसी[1] (कल्पना-प्रधान नाटक) बडी स्वाभाविक लगती है। किसी प्रकारके दृश्य, स्थान एव पात्रकी कल्पना इसमे सरलतासे की जा सकती है। इसमें हम असाधारण एव विशाल व्यक्तित्ववाले पात्रोंकी कल्पना कर सकते है, आजके किसी कलाकारको अनसूया और प्रियवदा-जैसी प्राचीन-कालीन पात्रोंसे बाते करते सुन सकते है (देखिए—'वे अभी भी क्वाँरी है'), पशु-पक्षियोंके रूपमे मानव-रूपका परिवर्तन देख सकते है,

---

१ 'फैंटेसी' की पूरी चर्चा आगे इसी नाटकके प्रकरणमें की गई है।

गिलगुडने लिखा है—"All the valiant efforts of the Mercury Theatre have failed as yet to break down what seems to be an instinctive aversion, on the part of English theatre audiences, from the play in verse. In radio there is another and a more cheerful story to tell. Since Geoffrey Bridson paved the way with his 'March of the Forty-Five' first produced in the early thirties, the record of the broadcast play in verse has been an increasingly distinguished and interesting one." रेडियो-काव्य-नाटकोकी लोकप्रियता इगलैंडमे बढ रही है।[1] हमारे यहाँ भी अब रेडियोके लिए काव्य-नाटक लिखे जा रहे है। काव्य-नाटक लिखनेवाले कवियोंके लिए आज अनेक सुविधाएँ सम्मुख है। स्वय भॉल गिलगुडके शब्दोमे—'To the modern poet, therefore, who writes to be heard rather than to be read, the radio play in verse. offers unrivalled opportunities.'

रेडियो-नाटकमे प्रतीकात्मक पात्रोको बडी सरलतासे उपस्थित किया जा सकता है। ये तनिक भी अस्वाभाविक नही लगेगे। 'विकलागोंका देश' काव्य-नाटकमे यह कल्पना की गई है कि हमारी वर्त्तमान सामाजिक

---

१ दे० 'सृष्टिकी साँझ' काव्य-नाटक।

रेडियो-नाटक : सीमाएँ और संभावनाएँ

जैसा कि पिछले अध्यायमें हम देख चुके हैं, रेडियो-नाटकके उपकरण बहुत परिमित हैं, और इसी कारण इसकी कुछ अपनी सीमाएँ हैं। यह केवल श्रव्य है, श्रव्य-साधनोंके द्वारा ही नाटककारको अपनी कृतिका निर्माण करना पडता है। रेडियो-नाटककार जानता है कि कान आँखोंका काम नहीं कर सकते, फिर भी वह सभी दृश्योंको अपने श्रव्य साधनोंसे उपस्थित करनेका प्रयत्न करता है। बहुत-से ऐसे भी दृश्य हैं, जिन्हें चित्रित करनेमें वह अपनेको असमर्थ पाता है। दूसरी बात यह है कि रेडियो-नाटकका समय भी सीमित रहता है। सामान्यतः रेडियो-नाटक पंद्रह, तीस या पैंतालीस मिनट अथवा एक घंटेके लिए लिखे जाते हैं। इस सीमित अवधिमें ही नाटककी सभी अवस्थाओंको उपस्थित करना पडता है। इन सीमाओंके रहते हुए भी रेडियो-नाटककी जो अपनी विशेषताएँ हैं, वे अन्य नाट्य-स्वरूपोंकी तुलनामें बडी स्पष्टतासे परिलक्षित होती हैं। फिल्म-नाटक तो अधिक साधन एवं शक्ति-सम्पन्न होते हैं, उनमें ये विशेषताएँ मिल सकती हैं, पर यहाँ ये सामान्य रंगमंच-नाटकोंकी तुलनामें उपस्थित की जा रही हैं।

रेडियोपर फैंटेसी[1] (कल्पना-प्रधान नाटक) बडी स्वाभाविक लगती है। किसी प्रकारके दृश्य, स्थान एवं पात्रकी कल्पना इसमें सरलतासे की जा सकती है। इसमें हम असाधारण एवं विशाल व्यक्तित्ववाले पात्रोंकी कल्पना कर सकते हैं, आजके किसी कलाकारको अनसूया और प्रियंवदा-जैसी प्राचीन-कालीन पात्रोंसे बातें करते सुन सकते हैं (देखिए—'वे अभी भी क्वाँरी हैं'), पशु-पक्षियोंके रूपमें मानव-रूपका परिवर्तन देख सकते हैं,

---

[1] 'फैंटेसी' की पूरी चर्चा आगे इसी नाटकके सन्दर्भमें की गई है।

तृतीय महायुद्धसे ध्वस्त ससारमे बचे हुए व्यक्तियोकी कहानी सुन सकते है ।[1] रेडियोपर इस तरहकी बाते अस्वाभाविक नही लगती ।

काव्य-नाटकोके लिए रेडियोने बडा अच्छा अवसर प्रदान किया है। रगमच और फिल्म-नाटकोमे पात्रोका काव्यमय सलाप अस्वाभाविक लग सकता है, पर रेडियो-नाटकमे नही । हम लोगोके यहाँ रगमचपर काव्य-नाटकके अभिनयकी कल्पना भी नही की जाती, लेकिन जहाँ रगमचपर काव्य-नाटक होते है, वहांके अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है। भॉल गिलगुडने लिखा है–"All the valient efforts of the Mercury Theatre havefailed as yet to break down what seems to be an instinctive aversion, on the part of English theatre audiences, from the play in verse In radio there is another and a more cheerful story to tell Since Geoffrey Bridson paved the way with his 'March of the Forty-Five' first produced in the early thirties, the record of the broadcast play in verse has been an increasingly distinguished and interesting one" रेडियो-काव्य-नाटकोकी लोकप्रियता इंगलैंडमे बढ रही है। हमारे यहाँ भी अब रेडियोके लिए काव्य-नाटक लिखे जा रहे है। काव्य-नाटक लिखनेवाले कवियोंके लिए आज अनेक सुविधाएँ सम्मुख है। स्वय भॉल गिलगुडके शब्दोमे—'To the modern poet, therefore, who writes to be heard rather than to be read, the radio play in verse offers unrivalled opportunities'

रेडियो-नाटकमे प्रतीकात्मक पात्रोको बडी सरलतासे उपस्थित किया जा सकता है। ये तनिक भीज स्वाभाविक नही लगेगे । 'विकलागोका देश' काव्य-नाटकमे यह कल्पना की गई है कि हमारी वर्तमान सामाजिक

---

१ दे० 'तृष्टिकी साँझ' काव्य-नाटक।

व्यवस्थामे सभी व्यक्ति विकलाग है, सभी अधे, लँगडे, लूले या बौने है, कोई भी ऐसा व्यक्तित्व नही, जो पूर्ण हो। जिन मनुष्योकी शक्तियोंका पूर्ण विकास नहीं हो पाता, उन्हे विकलाग कहना अनुचित नही है। ऐसे पात्र प्रतीकात्मक है, और इन्हे उक्त नाटकमे वडे स्वाभाविक ढगमे चित्रित किया गया है। प्रारभिक पक्तियाँ इस प्रकार है —

(दूरसे 'जिदगी–कुछ नहीं' गाते हुए लोगोकी आवाज निकटतर आती है।)

स्त्री– मै सोच रही हूँ,
क्या यह सब !
ये कौन व्यक्ति
जीवनका यह मर्सिया
गा रहे सिसक-सिसक ?

पुरुष– चाहिए तुम्हे तब परिचय कुछ ?
क्या परिचय दूं !
परिचय ये अपने ही देगे।

(भीड से कुछ फुसफुसाहटकी आवाज आती है)

पुरुष-स्वर १– मै लँगडा हूँ !
स्त्री-स्वर– मै अधी हू !
पुरुष-स्वर २– मै लूला हू !
पुरुष-स्वर ३– म बौना हू !
पुरुष-स्वर ४– मै हूँ कुरूप !
सब – हम सब कुरूप !

इन प्रतीकात्मक पात्रोंकी बातोंमे विकलागोंके देशकी कल्पना सार्थक कर दी गई है। इसीसे सबधित एक और बात यहीं कह दी जाय। 'विकलागोका देश' विचार-प्रधान नाटक है। पात्रोंके माध्यमसे वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके सबधमे एक विचार उपस्थित किया गया है। रेडियोमे विचार-प्रधान नाटकोंके लिए पर्याप्त सुविधाए है। लेखकोंकी सुविधाके लिए बी० बी० सी० द्वारा प्रकाशित 'Somc Notes On

Radio Drama' मे कहा गया है—'There is one dramatic field which can be most profitably exploited by the radio dramatist the play of ideas Not that the play of action should be devoid of ideas That would be absurd But the microphone offers an extra-ordinarily sympathetic means of expression to the dramatist who has something to say or discuss which he is convinced could be made interesting to an audience of millions' ऐसे नाटकोमे यह आवश्यक है कि विचार सजीव पात्रो-द्वारा उपस्थित किये जायँ।

रेडियोपर जड पदार्थोका मानवीकरण बहुत स्वाभाविक लगता है। 'लौहदेवता' काव्य-नाटकमे यत्र-युगको 'लौहदेवता'की सज्ञा देकर मानव बना दिया गया है। प्रसरणके समय यत्रो-द्वारा लौहदेवताकी आवाज कुछ गभीर कर दी जाती है, जो बहुत प्रभावपूर्ण एव स्वाभाविक ज्ञात होती है।

रेडियो-नाटकोमे पात्रोका सम्मिलित कथन या समवेत-स्वर (chorus) भी दिया जा सकता है। ऊपर 'विकलागो का देश'से जो उद्धरण दिया गया है, उनमे एक स्थलपर समवेत-स्वरका व्यवहार हुआ है। इससे समूहकी व्यजना होती है। इस प्रकार यदि हम जन-समाजको पात्रके रूपमे उपस्थित करना चाहे, तो आसानीसे कर सकते है। 'लौहदेवता'मे जन-समाज ही पात्र है, व्यक्ति-विशेष नही। उदाहरणके लिए—

स्त्री—इसीलिए आशकित औ,
    भयभीत, क्षुब्ध हो,
    शरण तुम्हारी आये है हम !
समवेत—लौहदेवता,
    शरण तुम्हारी आये है हम !

मनोवैज्ञानिक चित्रणकी पर्याप्त सुविधाएँ भी रेडियो-नाटकमें प्राप्त हैं। यदि किसी पात्रका अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करना हो, तो उसके विरोधमें उसके मनको खड़ा करके कथनोपकथन करा सकते हैं। एक उदाहरण 'कहानियोंके रेडियो-रूपान्तर'के प्रसंगमें 'गोटेकी टोपी'से दिया गया है। फिल्मोंमें ऐसे अवसरोंपर पात्रकी प्रतिमूर्त्ति, अथवा दर्पण या जलमें उसके प्रतिबिम्बके साथ पात्रका कथनोपकथन कराया जाता है।

इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटकोंमें विक्षिप्तावस्थाका भी चित्रण किया जा सकता है। एक उदाहरण 'दोषी कौन ?' नाटकके अंतिम भागमें दिया जा रहा है। एक व्यक्ति जीवनके संघर्षोंमें पड़कर टूट जाता है, विक्षिप्त हो जाता है। वह लोगोंकी समझमें बेमतलबकी बातें बोलता है, लेकिन ये बेमतलबकी बातें कहीं बाहरसे नहीं आ टपकतीं, इनका जन्म तो उस व्यक्तिके जीवनमें ही होता है। उसके अवचेतनमें जो कटु स्मृतियाँ छिपी हुई हैं, उन्हींसे प्रेरित होकर वह बेमतलबकी बातें बोलता है। एक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

एक आदमी—यहाँ बैठिए उमेश बाबू !

उमेश—यहाँ बैठूं ? (अट्टहास)

(पृष्ठभूमिमें तीव्र संगीत)

उमेश—तो, मुझे इस घरमें स्थान नहीं मिलेगा ?

रघुवीर—मैं लाचार हूँ उमेश !

उमेश—तब मेरे लिए कोई उपाय नहीं है ?

रघुवीर—नहीं।

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

उमेश—(अट्टहास)

एक आदमी—उमेश बाबू, यहाँ आइए !

उमेश—यहाँ आऊँ ? —नहीं आऊँगा, नहीं आऊँगा, मेरे लिए कोई स्थान नहीं है। (अट्टहास)

(पृष्ठभूमिमें तीव्र संगीत)

रघुवीर—अभी-अभी हीरालाल और मनोहरप्रसाद आये थे। उन्होने साफ-साफ कह दिया है कि मैं बिरादरीमे रहना चाहूँ, तो तुम्हे घरमे न रक्खूँ!

उमेश—लेकिन उनके कहनेसे क्या?

रघुवीर—नही उमेश, वे गाँवके प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

उमेश—(अट्टहास) नही आऊँगा, नही आऊँगा, तुम सब प्रतिष्ठित व्यक्ति हो, प्रतिष्ठित! (अट्टहास)

स्वप्न-दृश्य तो रेडियो-नाटकोंके लिए वहुत ही आसान है। जिस प्रकार विक्षिप्तावस्थाके प्रदर्शनमे सगीत महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, उसी प्रकार स्वप्न-दृश्यके भी। 'अवपाली'के रेडियो-रुपान्तरमे (आगे 'रेडियो-रुपान्तर' के प्रसगमे) इसका उदाहरण देखा जा सकता है।

समयके वीतनेकी व्यजना जितनी सरलतासे रेडियो-नाटकमे की जा सकती है, उतनी सरलतासे रगमच-नाटकमे नही। इसके लिए भी सगीतका सहारा लिया जाता है। कभी-कभी नैरेशनका भी उपयोग किया जाता है। उदाहरण 'नैरेशन'के प्रसगमे आगे देखा जा सकता है।

रेडियो-नाटकमे काल और स्थानका कोई बन्धन नही है। अतीत और भविष्य, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव, सबकी ओर वडी आसानीसे यात्रा की जा सकती है। 'वे अभी भी क्वाँरी हैं' के प्रारभिक अशसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि किस प्रकार निस्सीम कालमे यात्रा की जा सकती है। स्थान-परिवर्त्तन भी वडी जल्दी-जल्दी किया जा सकता है। उदाहरण 'अवपाली'के रुपान्तरसे उद्धृत अशमे आगे देखा जा सकता है। ये सुविधाएँ रेडियो-नाटकमे प्राप्त हैं, इसका अर्थ यह नही कि हमेशा इनका उपयोग किया ही जाय। यहाँ सकलन-त्रयका कोई बन्धन नही है अवश्य, लेकिन इस स्वतन्त्रताका उपयोग इस प्रकार न हो कि घटनाओकी शृखला टूट जाय, और नाटकीय प्रभावमे किसी प्रकारकी रुकावट आ जाय।

अन्य नाटकोमे घटनाओकी गति आगेकी ओर ही होती है, पर रेडियो-नाटकमे, आवश्यक होनेपर, पात्र पीछे मुडकर अपने अतीतको भी देख सकते

है। इसे अंग्रेजीमें 'फ्लैश-बैक' (Flash-back) कहते हैं। 'नैरेशन'के प्रसंगमें आगे 'रंग और रूप'में एक उद्धरण दिया गया है, जिसमें माईकेल एंजिलो अपनी मृत्युकी घडीमें अतीतकी स्मृतियाँ देख रहा है।

इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटकमें किसी भी स्थानका दृश्य उपस्थित किया जा सकता है। इसमें हम स्वर्ग, नरक, आफिस, ट्रेन, युद्ध आदि सब स्थानोंको चित्रित कर सकते हैं।

रंगमंच-नाटकोंकी तुलनामें रेडियो-नाटकोंकी एक विशेषता और है। रंगमंचपर, यदि प्रेम या षड्यन्त्रका प्रसंग हो, तब भी पात्रोंको जोरसे बोलना पड़ता है, जो अस्वाभाविक लगता है। रेडियोपर यह बात नहीं है। यहाँ जरूरत पड़नेपर पात्र धीमीसे धीमी आवाजमें बोल सकते हैं। इससे नाटकमें किसी प्रकारकी अस्वाभाविकता नहीं आने पाती। स्वगत-कथन भी रेडियोपर बहुत स्वाभाविक लगते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया, वही सब कुछ नहीं है। ये तो संकेत मात्र हैं। रेडियो-नाटकमें अभी अनेक संभावनाएं और छिपी हुई हैं, जिन्हें प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार स्वयं खोज निकालेंगे। उदाहरणके लिए, रेडियो-नाटकमें चित्र या दृश्य इस प्रकार दिखाया जा सकता है, जैसे हम पेंटिंग देख रहे हों। पेंटिंग या चित्रमें जो व्यक्ति और वस्तुएं चित्रित होती हैं और उनकी 'स्थिति' या जो पारस्परिक अनुपात (दूरी या सान्निध्य) होता है, उसे हम उनके या उनसे सबंध रखनेवाले स्वरोंकी अपेक्षाकृत दूरी या निकटताके द्वारा रेडियो-नाटकमें चित्रित कर सकते हैं।

रेडियो-नाटकके उपकरण

यह हम देख चुके हैं कि रगमच, फिल्म और रेडियोके लिए लिखे गये नाटकोमे पर्याप्त अतर है। रगमच और फिल्मके नाटकोमे जो अनेक सुविधाएँ प्राप्त है, रेडियो-नाटकोमे उनका नितात अभाव है। रेडियो-नाटकोमे दृश्य-तत्त्व बिल्कुल नही रहते। उनकी कमी श्रव्य साधनोसे पूरी करनी पडती है। ये श्रव्य साधन केवल तीन ही हैं, जिनका रेडियो-नाटकोमे व्यवहार किया जाता है —भाषा, ध्वनि-प्रभाव और सगीत। इन तीनोका आधार है ध्वनि। ध्वनि अभिव्यक्तिका बहुत सशक्त साधन है। इसकी अपनी विशेषताएँ है। इनकी अभिव्यजना-शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि कोई ध्वनि कितने जोरसे और कितने अतरपर उत्पन्न होती है, उसकी गति क्या है, तथा उसमे लयपूर्णता किस मात्रामे है। रेडियो-नाटक-विशेषज्ञ आर्नहाइमने तो कहा है कि ध्वनिकी ये विशेषताएँ या गुण ही सभी श्रव्य कलाओके सृजनात्मक साधन हैं। यह तो हम अपने प्रतिदिनके जीवनमे ही देखते हैं कि ध्वनि-परिवर्त्तनके साथ ही शब्दोके अर्थमे भी परिवर्त्तन हो जाता है। एक ही शब्दको भिन्न-भिन्न लहजेमे उच्चरित करके, एक ही शब्द या वाक्यकी कई बार आवृत्ति करके उनसे हर्ष, शोक, स्नेह, घृणा, क्रोध आदि अनेक भावनाओकी अभिव्यक्ति की जा सकती है। यह बात सगीत और ध्वनि-प्रभावोपर भी समान रूपसे लागू है। जो कार्य चित्रकार रगोके द्वारा करता है, वही रेडियो-नाटककार और अभिनेता ध्वनियोके द्वारा। अब हम रेडियो-नाटकके तीनो उपकरणोपर अलग-अलग विचार करते हैं।

भाषा

भाषा ही रेडियो-नाटकका प्राण है। इसके अभावमे नाट्य-स्वरूप एक पलके लिए भी खडा नही हो सकता। रेडियो-नाटकोका भवन शब्दोपर

ही खड़ा होता है। शब्दोंके द्वारा ही नाटककारको दृश्य-तत्त्वोंकी कमी पूरी करनी पड़ती है। लेकिन यहाँ नाटककारको शब्दोंके श्रव्य स्वरूपपर ही ध्यान देना है, लिखित स्वरूपपर नही। उसे याद रखना है कि शब्द अक्षरोंका समूह नही, बल्कि एक ध्वनि है। बोलनेपर शब्दोंकी जो ध्वनि हम सुनते हैं, वही रेडियो-नाटककारका साधन है, जिसके द्वारा वह अपनी कला-कृतिकी रचना करता है। भाषाका जन्म शब्दोंकी श्रव्य-ध्वनियोंसे हुआ है, लेकिन जबसे मुद्रण-यन्त्रका आविष्कार हुआ है, भाषामे शब्दोंके लिखित रूपको महत्त्व दिया जाने लगा है। इस सबधमे श्री सोमनाथ चिबरने सत्य ही लिखा है—'The written word inculcated among writers the habit of thinking in terms of the sentence and the paragraph It gradually took the writer and the reader away from the meaning of the words, the images and responses each word evokes when it is spoken It encouraged the writing of plays that come out better on the page than on the stage, of poetry which is more concerned with how it is printed than how it is read' (Some Aspects of Broadcasting in India)

तात्पर्य यह कि मुद्रण-यन्त्रके आविष्कारसे लोगोंका ध्यान शब्दोंके लिखित रूपपर ही अटक गया, लेकिन रेडियो-नाटकोंमे उनका कोई मूल्य नहीं है। रेडियो-नाटककारके लिए आवश्यक है कि वह श्रव्य शब्दोंकी शक्ति पहचाने, यह समझे कि किन शब्दों और वाक्योंका प्रभाव श्रोतापर किस प्रकार पड़ेगा। शब्दोंके लिखित और श्रव्य स्वरूपमें क्या अन्तर है, इसके लिए एक उदाहरण देखिए—

'यदि व्यक्तिमें एक विशिष्ट स्वत्व है—और हमने सिद्ध किया है कि महत्त्वका अंश वही है—तब उसमें अनुकल्पनाकी माँग भी होगी ही, मनोप-

जनक सामाजिक परिवृत्ति न मिलनेकी कसक भी होगी ही—तब क्या फिर हम उसी भोंडी अतिव्याप्तिकी ओर लौट आएँ ?'

इस वाक्यका अर्थ-ग्रहण एक बार पढनेपर सभव नही। इसके लिए हम इसे अनेक बार भी पढ सकते हैं, इसमे व्यवहृत डैश आदि चिह्नोसे सहायता ले सकते है, लेकिन रेडियोमे ये बाते नही है। वहाँ श्रोता किसी शब्द या वाक्यको एक ही बार सुनता है, वह इच्छा रखते हुए भी उसे दुबारा नही सुन सकता, रेडियोपर बोलनेवाला व्यक्ति उसे इतना अवकाश नही देगा कि वह तनिक रुककर किसी वाक्य या वाक्याशका अर्थ पूरी तरह समझ ले। साथ ही रेडियो-श्रोताके लिए डैश आदि चिह्नोका कोई महत्त्व नही है, उसे तो केवल पढनेवालेके ढगपर निर्भर रहना है।

तात्पर्य यह कि रेडियोमे केवल उन्ही शब्दो और वाक्योका मूल्य है, जो सरलतासे बोले जा सके और श्रोता भी जिनका अर्थ-ग्रहण शीघ्र ही बिना किसी आयासके कर ले।

रेडियोके लिए नाटक आदि लिखनेवाले कलाकारोके पास पर्याप्त शब्द-भाडार होना चाहिए। लिखित रूपमे एक ही शब्द दस बार हमारी आँखोके सामने आ सकता है, लेकिन रेडियोपर शब्दोकी आवृत्ति बहुत खटकती है। एक ही शब्दका व्यवहार बार-बार न किया जाय, इसके लिए उस शब्दके पर्यायसे काम लेना चाहिए।

तो, रेडियो-नाटकका प्रमुख श्रव्य साधन है भाषा, जिसका व्यवहार दो रूपोमे किया जाता है—(१) कथनोपकथन या सलापके रूपमे और (२) प्रवक्ताके कथन अथवा नैरेशन (Narration) के रूपमे। अब हम इनपर बारी-बारीसे विचार करते है।

[१] संलाप

सफल सलापकी पहली विशेषता यह होनी चाहिए कि अभिनेता उसे सरलतासे बोल सके। शब्दो और वाक्योका सगठन इस प्रकारका होना

चाहिए कि अभिनेताओंको उनके बोलनेमे किसी प्रकारकी कठिनाईका अनुभव न हो। एक उदाहरणसे बात स्पष्ट हो जायगी। 'अम्बपाली' नाटककी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'कहीं अजीब देशमे पहुँच गई हूँ, जहाँ चारो ओर फूल-ही-फूल है। जिन्हें हम गूलर-पाकड़-पीपल कहते है, उनमे भी फूल लगे है—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके। जमीनपर घास-फूसकी जगह फूलोकी पखुड़ियाँ बिछी है और धूलकी जगह पीत-पराग बिखरा है।'

उसी उद्धरणका एक परिवर्तित रूप देखिए—

'कितना सुन्दर देश है यह! फूलोका देश! राशि-राशिके फूल! चारो ओर फूल-ही-फूल—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके! धरतीपर फूलोकी पखुड़िया, धूलके बदले पीत पराग!'

दोनो उद्धरणोको बोलकर पढ़नेमे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा कि किसके पढ़नेमें अधिक सुगमता होती है। प्रथम उद्धरण अपने लिखित रूपमे ठीक है, लेकिन दूसरेमे जो प्रवाह और गति है, वह पहलेमे नहीं है। नाटकोंके सवादोंमे यह विशेषता अनिवार्य है। सफल सवादोंका लिखना बहुत सहज नहीं है, और कुछ अशोतक कठिन भी। प्रसिद्ध रेडियो-नाटक-विशेषज्ञ वाल गिलगुडके विचारमे तो सफल सवाद लिखनेकी शक्ति जन्मजात होती है—'Now, in my opinion, for what is worth, the ability to write dialogue is one with which one is born or not It cannot be learned and it cannot be taught.' लेकिन बात ऐसी नहीं है। [illegible] [illegible] है। [illegible] है—'Constant observation of the way people talk and frequent trial of the dialogue by reading it aloud, will do much to keep the radio writer on the right lines.' [illegible]

बोलकर सलापोको लिखनेका अभ्यास नाटककारको सलाप-लेखनमे कुशल बना सकता है।

सफल नाटकीय कथनोपकथनकी दूसरी विशेषता यह है कि वह बडी शीघ्रतासे उत्तर-प्रत्युत्तरके रूपमे आगे बढता जाता है। एक अग्रेज लेखकने सफल कथनोपकथनकी उपमा एक ऐसे गेंदसे दी है, जो कही ठहरता नही, बल्कि एक हाथसे दूसरे हाथमे होता हुआ सतत गतिशील रहता है। ऐसे कथनोपकथनोसे नाटकमे एकरसता नही आने पाती और घटनाओकी गतिशीलता बनी रहती है। ऐसा तभी सभव है, जब लेखक कम-से-कम किंतु उचित शब्दोंके द्वारा सवाद-रचनाका प्रयत्न करे। सक्षिप्ति सफल सलापोकी बहुत बडी विशेषता है। शब्दो एव अलकारोकी छटा दिखलानेका अवकाश रेडियो-नाटकमे नही रहता। इसका मोह त्यागकर ही कोई सक्षिप्त एव प्रभावशाली सलाप लिख सकता है। लबे-लबे सलाप मनको उबानेवाले होते हैं। उनसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए। हाँ, आवश्यकता पडनेपर स्थान-स्थानपर बडे सलाप भी लिखे जा सकते है, जैसे कोई व्यक्ति भावावेशमे बोल रहा हो,तो उसके सलापमे बडे-बडे अश दिये जा सकते हैं।

सफल सलापके लिए यह भी अनिवार्य है कि वह पूर्णत स्वाभाविक हो। यह तभी सभव है, जब वह पात्रोकी चारित्रिक विशेषताओंके अनुरूप हो। जैसा पात्र हो, जैसी उसकी शिक्षा-दीक्षा हो, जैसे वातावरणमे वह पला हो, वैसा ही उसका वार्तालाप होना चाहिए। इस प्रकारका सफल सलाप पात्रोंके चरित्राकनमे भी सहायता पहुँचाता है। स्पष्ट है कि अगर किसी नाटकमे चार पात्र हो, तो चारोकी भाषा अपनी-अपनी होनी चाहिए, उनके बोलनेका ढग भी अलग-अलग होना चाहिए। किसी पात्रके सलापकी ऐसी पक्तियाँ, जिन्हे नाटकका कोई भी पात्र सरलतासे बोल सके, नाटकको असफल बना देगी।

सलापोकी लयपूर्णतापर भी ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक वाक्यकी अपनी लय होती है। भावात्मक स्थितिके साथ-साथ वाक्योकी लय-

पूर्णता तो बदलती ही है, यह बहुत अंशोंतक वाक्योंके संगठनपर भी निर्भर है। समान रूपमें संगठित वाक्योंमें समान ही लयपूर्णता होती है। इससे रचनामें एकरसता आ जानेकी आशंका रहती है। लेखकको सदा इस बातपर ध्यान रखना है कि संलापके वाक्योंका संगठन सदा बदलता रहे, जिससे लयपूर्णतामें भी विविधता बनी रहे। उदाहरण आगे 'रेडियो-रूपक' के प्रसंगमें देखिए, जिसमें मिथिलाके दार्शनिकोंका उल्लेख किया गया है।

संलापकी ये विशेषताएं रंगमंच तथा फिल्म-नाटकोंके लिए भी सही हैं, पर रेडियो-नाटकमें संलापको अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। रेडियो-नाटकमें दृश्य-तत्त्वोंको प्रस्तुत करनेका बहुत बड़ा साधन वार्तालाप है। घटना-स्थलका वर्णन, वातावरणका निर्माण इसीके द्वारा किया जाता है। एक उदाहरण-द्वारा यह बात स्पष्ट की जाती है—कबीर-जयन्तीके लिए लिखित एक नाटकमें कबीरकी पत्नी कह रही है—

लोई—आप देखते नहीं ? यह भयावनी रात ! चारों ओर घोर अन्धकार ! प्रकृति उत्पात मचा रही है, आँधी चल रही है, तूफान उठ रहा है, प्रलयके बादल उमड़े चले आ रहे हैं, वर्षा हो रही है, घनघोर वर्षा ! सुनिए, ध्यानसे सुनिए, यह आँधी कह रही है, ये मेघ कह रहे हैं—'लोई, तू पाप करने जा रही है।' नहीं सुनते आप ? ये चमकती हुई बिजलियाँ मुझे मना कर रही हैं, कह रही हैं—'मत जाओ लोई, मत जाओ।'

वार्तालापके बीचमें आये हुए इस छोटे अंशमें प्राकृतिक वातावरण भी उपस्थित हो जाता है, भावाभिव्यक्ति भी हो जाती है, पात्र-परिचय भी मिल जाता है। वार्तालापके प्रसंगमें पात्र-परिचयपर विशेष ध्यान रखना पड़ता है जिससे श्रोता हमेशा यह समझता रहे कि अब कौन पात्र किससे बात कर रहा है। उदाहरणके लिए ये पंक्तियाँ देखिए—

रेखा—रात बीत रही है मानव !

मानव—मेरी आँखोंमें नींद नहीं है।

रेखा—मैं कहती हूँ, अब सो जाओ।

माधव—नही रेखा, अभी मैं नही सो सकता।

स्पष्ट है कि रेखा और माधवमे बाते हो रही है। ऐसे अशोसे प्रत्येक रेडियो-नाटक भरा हुआ मिलेगा।

भाव-भगिमा, मुद्रा (रस-सिद्धान्तके अनुभाव) आदिका भी सकेत वार्त्तालापके द्वारा ही किया जाता है। 'विषादकी छाया'की ये पक्तियाँ देखिए—

शकर—क्या देख रहे हो सुरेश ?

सुरेश—मैं देख रहा हूँ तुम्हारा मुख, तुम्हारे मुखकी रेखाएँ, तुम्हारी आँखे! शकर, तुम्हारे मुखपर विषादकी छाया घिरी हुई है, विषादकी गहरी छाया!

पात्रोकी गतिविधि, उनकी उपस्थिति-अनुपस्थिति तथा उनके कार्य-कलापोका भी परिचय सलापोके द्वारा ही देना पडता है।

रेडियो-नाटकमे कथनोपकथनका कितना महत्त्व है, और उनसे कैसे प्रयोजन सिद्ध किये जा सकते है, यह स्पष्ट है। रेडियो-नाटककारमे, जैसा ऊपर कहा गया है, प्रभावशाली एव भावानुरूप सलाप लिखनेकी क्षमता अनिवार्य है। हाँ, सलापकी सूक्ष्मता, विविधता, बलाघात आदिको समझना और उन्हे सजीव एव सप्राण बनाना रेडियो-नाटकके अभिनेताओका काम है।

[२] नैरेशन

'नैरेशन' (Narration) से तात्पर्य नाटकके उस अशसे है, जिसमे कोई पात्र नाटकके क्रिया-कलापोका वातावरण निर्मित करता है, आवश्यक विवरण देता है, घटनाओकी शृखला जोडता है, अथवा घटनाओकी आलोचना करता है। ऐसे पात्रको नैरेटर, सूत्रधार, प्रवक्ता, वाचक, पुरुष-स्वर या स्त्री-स्वर, कथाकार, आलोचक अथवा उद्घोषक

पूर्णता तो बदलती ही है, यह बहुत अशोतक वाक्योंके सगठनपर भी निर्भर है। समान रूपसे सगठित वाक्योमे समान ही लयपूर्णता होती है। इससे रचनामे एकरसता आ जानेकी आशका रहती है। लेखकको सदा इस बातपर ध्यान रखना है कि संलापके वाक्योंका सगठन सदा बदलता रहे, जिससे लयपूर्णतामे भी विविधता बनी रहे। उदाहरण आगे 'रेडियो-रूपक' के प्रसगमे देखिए, जिसमे मिथिलाके दार्शनिकोंका उल्लेख किया गया है।

सलापकी ये विशेषताएँ रगमच तथा फिल्म-नाटकोंके लिए भी सही हैं, पर रेडियो-नाटकमे सलापको अन्य कार्य भी करने पडते हैं। रेडियो-नाटकमे दृश्य-तत्त्वोंको प्रस्तुत करनेका बहुत बडा साधन वार्त्तालाप है। घटना-स्थलका वर्णन, वातावरणका निर्माण इसीके द्वारा किया जाता है। एक उदाहरण-द्वारा यह बात स्पष्ट की जाती है—कबीर-जयतीके लिए लिखित एक नाटकमे कबीरकी पत्नी कह रही है—

लोई—आप देखते नही? यह भयावनी रात! चारो ओर घोर अधकार! प्रकृति उत्पात मचा रही है, आँधी चल रही है, तूफान उठ रहा है, प्रलयके बादल उमडे चले आ रहे हैं, वर्षा हो रही है, घनघोर वर्षा! सुनिए, ध्यानमे सुनिए, यह आंधी कह रही है, ये मेघ कह रहे हैं—'लोई, तू पाप करने जा रही है।' नही सुनते आप? ये चमकती हुई बिजलियाँ मुझे मना कर रही है, कह रही है—'मत जाओ लोई, मत जाओ।'

वार्त्तालापके बीचमे आये हुए इस छोटे अशमे प्राकृतिक वातावरण भी उपस्थित हो जाता है, भावाभिव्यक्ति भी हो जाती है, पात्र-परिचय भी मिल जाता है। वार्त्तालापके प्रसगमे पात्र-परिचयपर विशेष ध्यान रखना पडता है, जिससे श्रोता हमेशा यह समझता रहे कि कब कौन पात्र किससे बाते कर रहा है। उदाहरणके लिए ये पक्तियाँ देखिए—

रेखा—रात बीत रही है माधव!
माधव—मेरी आँखोमे नींद नही है।

रेखा—मैं कहती हूँ, अब सो जाओ।

माधव–नही रेखा, अभी मैं नही सो सकता।

स्पष्ट है कि रेखा और माधवमे बातें हो रही हैं। ऐसे अशोसे प्रत्येक रेडियो-नाटक भरा हुआ मिलेगा।

भाव-भगिमा, मुद्रा (रस-सिद्धान्तके अनुभाव) आदिका भी सकेत वार्त्तालापके द्वारा ही किया जाता है। 'विषादकी छाया'की ये पक्तियाँ देखिए—

शंकर–क्या देख रहे हो सुरेश ?

सुरेश–मैं देख रहा हूँ तुम्हारा मुख, तुम्हारे मुखकी रेखाएँ, तुम्हारी आँखे! शकर, तुम्हारे मुखपर विषादकी छाया घिरी हुई है, विषादकी गहरी छाया!

पात्रोकी गतिविधि, उनकी उपस्थिति-अनुपस्थिति तथा उनके कार्य-कलापोका भी परिचय सलापोके द्वारा ही देना पडता है।

रेडियो-नाटकमे कथनोपकथनका कितना महत्त्व है, और उनसे कैसे प्रयोजन सिद्ध किये जा सकते है, यह स्पष्ट है। रेडियो-नाटककारमे, जैसा ऊपर कहा गया है, प्रभावशाली एव भावानुरूप सलाप लिखनेकी क्षमता अनिवार्य है। हाँ, सलापकी सूक्ष्मता, विविधता, बलाघात आदिको समझना और उन्हे सजीव एव सप्राण बनाना रेडियो-नाटकके अभिनेताओका काम है।

[२] नैरेशन

'नैरेशन' (Narration) से तात्पर्य नाटकके उस अशसे है, जिसमे कोई पात्र नाटकके क्रिया-कलापोका वातावरण निर्मित करता है, आवश्यक विवरण देता है, घटनाओकी शृखला जोडता है, अथवा घटनाओकी आलोचना करता है। ऐसे पात्रको नैरेटर, सूत्रधार, प्रवक्ता, वाचक, पुरुष-स्वर या स्त्री-स्वर, कथाकार, आलोचक अथवा उद्घोषक

कहा जाता है। ऐसे पात्रोका काम नाटककी उन बातोको कहना होता है, जो कथनोपकथनके अतर्गत नही आ पाती। श्रोता नाटकको भलीभाँति समझ सके, इसके लिए ऐसे पात्रोका नियोजन स्थान-स्थानपर अनिवार्य हो जाता है। नैरेटरके विषयमे सामान्य धारणा है कि नैरेटर केवल रूपकोमे ही होते है, नाटकोमे नही। उदाहरणके लिए, प्रसिद्ध नाटककार श्री उदयशकर भट्ट, 'कालिदास'की भूमिकामे लिखते है—'रेडियोमे नाटक और रूपक दो भिन्न वस्तुएँ है, और रूपक तो स्पष्टत रेडियोकी ही देन है। रूपकमे घटनाओका सकलन एव विकास 'सूत्रधार' या 'नैरेटर'के द्वारा होता है।' पर बात ऐसी नही है। रूपकोमे तो नैरेटर होते ही है, पर आवश्यकता पडनेपर नाटकोमे भी इन्हे रखना पडता है। रूपको और नाटकोमे केवल यही अतर नही है कि रूपकोमे नैरेटर रहते है और नाटकोमे नही रहते। दोनोके वास्तविक अतरका स्पष्टीकरण आगे 'रेडियो-रूपक' अध्यायसे हो जाएगा। हाँ, यह मतभेदका विषय अवश्य है कि नाटकोमे नैरेटरको रखा जाय या नही। कुछ लोग कहते है कि नैरेटर घटनाओकी गति रोक देते है, उनके विकासमें विघ्न उपस्थित करते है। दूसरे लोगोका विचार है कि वातावरणकी सृष्टि करने अथवा घटनाओकी शृखला जोडनेके लिए नैरेटरका रखा जाना उचित है। श्री फेलिक्स फेल्टनके शब्दोमे—'There have been times when narrator's stock has been so low that radio-writers have resorted to contortions of ingenuity to dispense with him At others, they have accorded him the highest seat of honour, and regarded him as the key to radio technique' इस प्रकार नैरेटर कभी सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है, कभी वह अनावश्यक समझा जाता है। इसका कारण यह है कि पहलेके अन्य नाट्य-स्वरूपोमे इस प्रकारका पात्र नही था। रेडियो-नाटकोमे इसका प्रवेश पहली बार हुआ है। इसीलिए इसके औचित्य-अनौचित्यके सबधमे मतभेद है। इस विषयपर श्री फेलिक्स फेल्टनका विचार उचित जँचता है। उनके

अनुसार, स्थान-स्थानपर नैरेटर बडा महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है। उन्होने चेस्टरटनकी एक कहानीके रूपातरमे नैरेटरको जान-बूझकर नही आने दिया है, लेकिन वे लिखते है कि कुछ पक्तियोके नैरेशनसे रूपातरमे चेस्टरटनकी अपनी विशेषताएँ झलक जाती। स्वय उनके शब्दोमे—'As an exercise in the use of radio-dialogue, I have in the above passage, discarded the narrator entirely. But it would, in fact be a pity to do so. A few lines of narration are unobjectionable, and perform the valuable service of preserving the essential Chesterton touch' हिंदीमे इस प्रकारके नैरेशनका एक उदाहरण—'कहानियोके रूपातर' शीर्षक अध्यायके अतर्गत 'प्रसाद' जी की कहानी 'इन्द्रजाल'के रूपातरमे देखा जा सकता है। हाँ, यह याद रखनेकी बात अवश्य है कि रेडियो-नाटकके जिस भेदको अगले अध्यायमे 'रेडियो-नाटक' कहा गया है, उसमे भरसक नैरेटर न आये, यही अच्छा है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकोमें वह आ भी सकता है, पर सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक नाटकोमे उसका प्रवेश कलात्मक नही समझा जाता।

नैरेटर दो प्रकारके होते है (१) वे नैरेटर, जिनके व्यक्तिगत जीवनका नाटककी घटनाओमे कोई सबध नही होता। वे नाटकके क्रिया-कलापोके तटस्थ दर्शक एव प्रवक्ता होते है। (२) वे नैरेटर, जो नाटकके पात्र होते है, और जिनके जीवनकी घटनाएँ नाटकसे प्रत्यक्ष सबध रखती है।

पहले प्रकारके नैरेटरकी बातोसे ज्ञात होता है, जैसे वह नाटककी सभी घटनाओसे परिचित हो, जैसे वह सर्वज्ञ हो, सब रहस्योको जानता हो। कभी-कभी वह घटनाओकी गतिमे रुकावट अवश्य डालता है, पर स्थान-स्थानपर आवश्यक प्रयोजन भी सिद्ध करता है। वह सक्षेपमे ऐसा आवश्यक विवरण देता है, जो किसी अन्य प्रकारसे नही दिया जा सकता, किंतु जिनका रहना अनिवार्य होता है, ताकि श्रोता घटनाक्रमको

अच्छी तरह पकड सके। इसका एक उदाहरण 'इन्द्रजाल' कहानीके रूपातरसे देखिए—

वेला (दूरसे)—चकई, रात भई, अब गा तू !
कौन देशमें चकवा प्यारा गाकर उसे बुला तू !

(गीत धीमी आवाजमें पृष्ठभूमिमें चलता रहता है।)

कथाकार— उस निर्जन प्रातमे जब अधकार खुले आकाशके नीचे खेल रहा था, तब वेला बैठी गा रही थी। पलासके छोटे-से जगलमे उसके गीत गूंज रहे थे। जैसे कमलके पास मधुकरको जानेसे कोई रोक नही सकता, उसी तरह गोली भी कब माननेवाला था ? आज उसके निरीह हृदयमे सघर्षके कारण आत्मविश्वास हो गया था। अपने प्रेमके लिए, अपने वास्तविक अधिकारके लिए उसमे झगडनेकी शक्ति आ गई थी। उसका छुरा कमरमे था, बाँसुरी हाथमें—

(बाँसुरीकी ध्वनि, वेलाके गीतके साथ। क्रमश. तेज होकर फिर मंद हो जाती है।)

कथाकार—आज प्रेमके आवेशने आवरण हटा दिया था, वे नाचने लगे। आज तारोकी क्षीण ज्योतिमे हृदयमे हृदय मिले, पूर्ण आवेगमे। आज वेलाके जीवनमे यौवनका और गोलीके हृदयमे पौरुषका प्रथम उन्मेष था।

(सहसा शाति)

गोली—आह ! कौन ?
भूरे—मैं हूँ गोली ! बच गया तू ! मेरा छुरा तुझे न लगा ! मेरी वेलाको गले लगाने चला है !
वेला— तू यहाँ क्या करने आया है ?

भूरे—चुप रह वेला !

गोली—मैं कहता हूँ भूरे, तू चला जा यहांसे, नही तो तेरी जान ले लूंगा !

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि विना नैरेशनके काम नही चलता। इसीके द्वारा आगेकी घटनाके लिए पृष्ठभूमि निर्मित कर दी गई है। इस सवधमे यह ध्यान रखना है कि नैरेशन आगे घटनेवाली घटनासे अधिक जोरदार न हो जाय। उदाहरणके लिए, यदि यह नैरेशन दिया जाय, 'पलकोमे मनहर सपने लिये हुए शकुन्तला महाराज दुष्यतके सम्मुख गई, किंतु दुष्यतने उसे न पहचाना' और इसके वाद दु खिता शकुन्तलाको दिखलाया जाय, तो कहा जाएगा कि यहां नैरेशन कमजोर है। यहा राजसभामे राजाके मुखसे प्रत्याख्यानकी वात ही मार्मिक और महत्त्वपूर्ण है। उसे नैरेशनमे न कहकर प्रत्यक्ष रूपमे चित्रित करना ही उचित होगा।

नैरेशनके सवधमे यह भी ध्यान रखनेकी वात है कि उसमे आगे या पीछे की घटनाओकी आवृत्ति न हो जाय। इससे नैरेशनकी निरर्थकता सिद्ध होगी। एक उदाहरण देखिए—

कथाकार—सत्यप्रकाश अव युवक था। जवतक पाँव न थे, तवतक अवहेलना, निरादर, भर्त्सना, सवकुछ सहकर घरमे रहता रहा। अव हाथ-पाव हो गये, तो वधनमें क्यो रहता ? एक दिन वह आत्माभिमानसे प्रेरित हो चल पडा।

ज्ञानप्रकाश (शिशु)—कहा जाते हो भैया ?

सत्यप्रकाश (युवक) जाता हूँ, कही नौकरी करूँगा।

ज्ञानप्रकाश—मै जाकर अम्मासे कहे देता हूँ।

सत्यप्रकाश—तो फिर मै तुमसे छिपाकर चला जाऊँगा।

ज्ञानप्रकाश—क्यो चले जाओगे ? तुम्हे मेरी जरा भी मुहब्बत नही है ?

सत्यप्रकाश—तुम्हे छोडकर जानेको जी नही चाहता ज्ञानू, लेकिन जिस घरमे कोई पूछनेवाला नही, उसमे अव नही रह सकूंगा। जवतक हाथ-पैर न थे, तवतक लाचारी थी।

यहाँ ज्ञानप्रकाश और सत्यप्रकाशकी बातोंमे यह ज्ञात हो जाता है कि सत्यप्रकाशका घरमे कोई सम्मान नही था, जबतक वह शिशु था, तबतक विवश होकर घरमे रहा, पर बडा होनेपर घरकी अवहेलना उसके लिए असह्य हो उठी। इस प्रकार सलापमे नैरेशनकी कोई बात छूटने नही पाती, फलत वह निरर्थक हो जाता है।

वह नैरेशन उचित समझा जाएगा, जो साधारण एव गौण घटनाओंका उल्लेख कर नाटककी गतिशीलतामे सहायक होता है। श्री प्रेमचदकी कहानी 'लैला'के रूपातरमे एक स्थानपर नैरेटर कहता है—'तेहरानमे घर-घर आनदोत्सव हो रहा था। शाहज़ादा नादिर लैलाको ब्याहकर घर लाया था। अपने प्यारे शाहज़ादेकी शादीमे धन और समयका मुंह देखना किसीको गवारा न था। रईसोने महफिले सजाई, चिराग जलाये, बाजे बजवाये, गरीबोने अपनी डफलियाँ सँभाली और सडकोपर खुशीमे उछलते फिरे। उसी दिन सध्या-समय'—यहाँ नैरेशनमे आनदोत्सवका उल्लेख कर दिया गया है, और आगेकी इससे अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओंके लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी गई है।

नैरेशन स्थान-स्थानपर आवश्यक है, लेकिन यह उचित नही है कि उसका बार-बार प्रयोग कर घटनाओंकी गतिमे बाधाए उपस्थित की जायँ। सबसे अच्छा तो यही होता है कि नैरेशन किसी घटनाके पूर्व ही दिया जाय। उसके-द्वारा, घटना-क्रममे किसी प्रकार विघ्न न डाला जाय।

किसी-किसी नाटकमे दो नैरेटरोंसे काम लिया जाता है। इसमे उचित यह होता है कि दोनो नैरेटर दो विभिन्न विचारो एव भावनाओंका प्रतिनिधित्व करते हो अथवा दो दलोंके हो, और वे अपने-अपने पक्ष एव दलसे सबधित घटनाओंका ही नैरेशन दे। उदाहरणके लिए, यदि कौरव-पाडव-युद्धका विवरण देना है, तो एक नैरेटर कौरव-दलकी घटनाओंको बतलाये और दूसरा पाडव-दलकी। लेखक चाहे तो दो नैरेटरोको इस प्रकार रख सकता है कि श्रोताओंको पता न चले कि दो नैरेटर बोल रहे है। इसके

लिए उपाय है कि दोनो नैरेटर उपर्युक्त दो श्रेणियोके हो। पहला नैरेटर घटनाओका तटस्थ दर्शक हो, और दूसरा नाटकका एक पात्र।

पद्य-नाटकोमे नैरेटरका उपयोग एक चारणके रूपमे किया जा सकता है। प्राचीनकालमे जिस प्रकार चारण युद्ध-वर्णन करते थे, उसी प्रकार नैरेटर विभिन्न घटनाओका विवरण दे सकते है तथा वास्तविक घटनाओके लिए उचित वातावरण निर्मित कर सकते है।

ये तो हुई पहली श्रेणीके नैरेटरकी बाते, अब हम दूसरी श्रेणीके नैरेटरके सबधमे विचार करे। यह द्वितीय श्रेणीका नैरेटर नाटकका एक पात्र होता है। इसीलिए कभी-कभी उसे पहचानना कठिन होता है कि वह एक नैरेटर है। ऐसे नैरेटरको हम सुविधाके लिए पात्र-नैरेटर कह सकते है। जीवन-चरितपर आधारित नाटकोमे ये महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। एक उदाहरण प्रसिद्ध कलाकार माईकेल एजिलोके जीवनपर आधारित नाटक 'रग और रूप' से देखिए। नाटक माईकेल एजिलोके अतिम क्षणसे प्रारभ होता है। एजिलो मर रहा है, और अपनी परिचारिकासे बाते कर रहा है। इन्ही बातोके प्रसगमे वह अपनी जीवन-गाथा कह जाता है—वही का एक छोटा-सा अश इस प्रकार है—

एजिलो (वृद्ध)—हाँ, आज मै बहुत बेचैन हूँ। आज मेरी आँखोके सामने मेरी समूची जिन्दगी नाच रही है। वे आदमी, जिनसे मेरी भेट हुई थी, वे स्थान, जिन्हे मैने देखे थे, वे मूर्तियाँ और चित्र, जिन्हे मैने बनाये थे, आज सब-के-सब मेरी आँखोके सामने तस्वीरोकी तरह चमक रहे है। लगता है, जैसे इस मरनेकी घडीमे मै अपनी बीती हुई जिन्दगी एक बार फिर जी रहा हूँ।

स्त्री—डाक्टरने मना किया है माईकेल, आप इतना न बोले, शात रहे।

एजिलो (वृद्ध)—(हल्की हँसी) मै शात रहूँ!—मुझे छोडकर सब

चले गये ! मेरे गुरु, मेरे शिक्षक लारेंजो, लारेंजो महान् ! तुमने देखा था उन्हे कभी ?

स्त्री—नही, मैने तो कभी नही देखा था।

एंजिलो (वृद्ध)—नही देखा था !—कितने अच्छे थे वे ! कितने प्रेमसे उन्होने मुझे चित्र और मूर्त्तिकलाकी शिक्षा दी थी ! उस समय मै सोलह वर्ष का था !

(छेनी-हथौड़ोकी आवाज)

लारेंजो—क्यो माईकेल, मूर्त्ति बन गई ?

एंजिलो (किशोर)—जी हाँ, यह देखिए !

लारेंजो—(हल्की हँसी) अरे, तुमने तो इसके दाँत तोड दिये !

एंजिलो (किशोर)—आपहीने तो कहा था ?

लारेंजो—कितने भोले हो तुम ?—खैर, इससे क्या हुआ, यह टूटा हुआ दाँत भी अच्छा ही लगता है ! सचमुच तुम बडे प्रतिभा-वाले हो, बहुत बडे कलाकार होगे ! मै तुम्हारे पिता लुडो-विकोसे कहूँगा कि वह तुम्हे मेरे साथ मेरे घरपर रहने दे ! मै तुम्हे कलाओंके बारेमे बहुत-सी बाते बतलाऊँगा। रहोगे मेरे यहाँ ?

एंजिलो (किशोर)—जी हाँ !

लारेंजो—तो, मै आज ही तुम्हारे पितासे बाते करूँगा !

(संक्षिप्त संगीत)

(छेनी-हथौड़ोकी आवाज)

लारेंजो—क्या कर रहे हो माईकेल ?

एंजिलो (किशोर)—यह, एक नई मूर्त्ति गढ रहा हूँ।

लारेंजो—तुम्हे हमेशा किसी-न-किसी मूर्त्तिमे लगा देखता हूँ।

एंजिलो (किशोर)—मुझे बहुत आनंद मिलता है इसमे ! और, जबसे आपके यहाँ आया हूँ, तबसे यही इच्छा होती है, कि मैं

एक ही वारमे सब कुछ सीख लूं। इतनी सुदर मूर्त्तियाँ आपके वगीचेमें है कि मै उन्हे देखता ही रह जाता हूँ।

लारेंजो—इसीलिए तो तुम्हे अपने यहाँ ले आया हूँ।

एंजिलो (किशोर)—कितना खुश हूँ मै यहाँ आकर! ऐसी सुदर कला-कृतियाँ तो मुझे कही भी देखनेको नही मिलती।

लारेंजो—अभी तुमने सब कुछ नही देखा है माईकेल! मेरे कमरोमे बहुत-से ऐसे चित्र हैं, जो ससारमे और कही देखनेको नही मिलेगे।

एंजिलो (किशोर)—मै उन्हे देखूंगा कैसे?

लारेंजो—तुम्हारे-जैसे शिष्यको मै सब कुछ दिखला दूँगा। ये लो कुजियाँ, मेरे सभी कमरोकी कुजियाँ हैं, उन्हे खोलकर जो कुछ देखना चाहो, देखना, और उनकी कलाको ध्यानसे समझने की कोशिश करना!

एंजिलो (किशोर)—कितने अच्छे है आप!

(पृष्ठभूमिमें शोक-सगीत)

लारेंजो—(रुँधा स्वर) मै जा रहा हूँ माईकेल!

एंजिलो (किशोर)—नही गुरुदेव, अभी आपसे मुझे बहुत कुछ सीखना है।

लारेंजो—तुम खुद सब कुछ सीख लोगे माईकेल! मुझे तुम्हारी प्रतिभा पर विश्वास है।

एंजिलो (किशोर)—अब मुझे इतने प्रेमसे कौन सिखलाएगा!

लारेंजो—अधीर न हो माईकेल! मेरी आखिरी घडी इतनी जल्दी आ पहुँची! मुझे दु ख है कि तुम यहाँ दो-तीन ही साल रह सके!

एंजिलो (किशोर)—लेकिन मै अब क्या करूँगा!

लारेंजो—जो काम तुम कर रहे हो, करते जाना। मुझे विश्वास है कि तुम इसमे सफल होगे, तुम ससारके सबसे बडे कलाकार होगे! अच्छा, एजिलो! मै चला! आह!

(शोक-सगीत तेज होकर फिर मंद हो जाता है।)

एजिलो (वृद्ध)—**(हल्की हँसी)**

स्त्री—क्या है माईकेल एजिलो? आप इस तरह क्यो हँस रहे है?

एजिलो (वृद्ध)—अपनी बीती हुई जिन्दगीको एक बार फिर देख रहा हूँ। कैसे सबलोग मुझे छोड-छोडकर चले गये! मेरे शिक्षक लारेजो महान् मुझे अकेला छोडकर चले गये, और मुझे फिर अपने पिताके घर लौट जाना पडा!

(और इसी तरह एजिलो अपनी आत्म-कथा कहता जाता है।)

आपने देखा कि यहाँ नैरेटर स्वय वृद्ध एजिलो है, वही अपने जीवनकी घटनाओका उल्लेख करता है, और विभिन्न दृश्य उसकी आंखोके सामने आते जाते है। नैरेटरके इस छद्म रूपको पहचान लेना श्रोताके लिए कठिन है। ऐसे पात्र-नैरेटरोकी सृष्टिमे यही लाभ है। अगर कोई नाटक किसीकी आत्म-कथाके आधारपर लिखना हो, तो उसमे उस व्यक्ति-विशेपकी शब्दावलियोका भी उपयोग किया जा सकता है। ऊपरके उद्धरणमे यह भी ध्यान देनेकी बात है कि छोटे-छोटे तीन विभिन्न दृश्योके बीच-बीचमे नैरेशन नही दिया गया। इस प्रकार नैरेशनका कम-से-कम व्यवहार हुआ है—वह भी दृश्योके प्रारभ या अतमे।

पात्र-नैरेटरोकी उपयोगिता स्पष्ट है, लेकिन सब जगह इनका नियोजन करना कठिन ही नही, असभव है। हाँ, किसी दृश्यको हम पात्रविशेपकी आँखोसे देख सकते है, अथवा सोच सकते है कि वह अपेक्षित प्रसगके बारेमे पूरी जानकारी रखता है। विशेपता उसको नाटकमे इस प्रकार रखनेमे है कि वह तटस्थ दर्शक ही नही, घटनाओमे भाग लेनेवाला भी हो। 'अहिंसाकी मूर्त्ति'से एक छोटा उदाहरण दिया जा रहा है। इसमे कल्पना की

गई है कि स्वर्ग-लोकमे महात्मा गांधीकी दूसरी वर्ष-गांठ मनाई जा रही है। स्वर्ग-लोकके नर-नारी उत्सवके आयोजनमे सलग्न है। उसी समय चद्रलोकका एक मनुष्य वहां आ पहुँचता है। उसकी भेट स्वर्ग-लोककी एक नारी लेखासे हो जाती है। वहांका सलाप इस प्रकार है—

लेखा—(वीणा-वादन)

पुरुष—(कुछ दूरसे) देवि! देवि!

लेखा—कौन?—आपने मुझे पुकारा?

पुरुष—हां देवि, मै इस लोकके लिए अपरिचित हूँ। क्या आप एक बात बतलाएँगी?

लेखा—स्वर्ग-लोकमे किसीसे कुछ पूछनेमे आपको सकोच न होना चाहिए। कहिए, आप क्या जानना चाहते है?

पुरुष—मै देख रहा हूँ, इस लोकके प्राणी आज स्थान-स्थानपर उत्सव का आयोजन कर रहे है, पत्र-पुष्पोसे घर-द्वार सजा रहे है! आज कोई त्योहार है क्या?

लेखा—नही-नही, त्योहार तो कल है। कल सध्या समय महात्मा गांधीजीकी दूसरी वर्ष-गांठ मनाई जाएगी। वे कलके ही दिन हमारे लोकमें आये थे।

पुरुष—और आज?

लेखा—उसी उत्सवकी तैयारी हो रही है।

पुरुष—लेकिन ये महात्मा गांधी है कौन?

लेखा—(आश्चर्यसे) आप महात्मा गांधीको नही जानते?

पुरुष—जी नही, मै आज ही चद्रलोकसे आ रहा हूँ।

लेखा—इसीलिए आप नही जानते। पृथ्वीपर तो कोई ऐसा प्राणी नही, जो महात्मा गांधीको न जानता हो।

पुरुष—क्या आप मुझे उनका परिचय देगी?

लेखा—अवश्य! इतनी महान् आत्मा स्वर्ग-लोकमे कभी-कभी ही आती है। महात्मा गांधी सत्यके साक्षात् अवतार है, त्याग

और तपस्याके दूत हैं, प्रेम और करुणाके प्रचारक हैं, अहिंसाकी मूर्त्ति हैं।

और, इस प्रकार लेखा महात्मा गाँधीका जीवन-परिचय देना शुरू करती है। वह भी एक प्रकारसे पात्र-नैरेटर ही है। चूँकि यह नाटक बच्चों-के कार्यक्रमके लिए लिखा गया था, नाटकमे बच्चोकी अभिज्ञताका प्रति-निधित्व करनेवाला कोई पात्र होना चाहिए था। इसीलिए पुरुषको महात्मा गाँधीके जीवनसे पूर्णत अभिज्ञ रखा गया है।

इसी प्रकारसे नैरेटर विभिन्न नाटकोमे विभिन्न रूप धारण करके आता है। छद्म-वेषमे रहनेपर वह कुछ नवीन-जैसा लगता है। 'उत्तरा और द्रौपदी' नाटकमे मैंने इतिहासको नैरेटर बनाया था। प्रारभकी कुछ पक्तियाँ इस तरह हैं—

(पुस्तकके पन्ने उलटनेकी आवाज)

नारी—इतिहास! —इतिहास!

इतिहास—कौन हो तुम?

नारी—मैं हूँ नारी।

इतिहास—क्या चाहिए तुम्हे?

नारी—मैं तुमसे कुछ सुनने आयी हूँ इतिहास! तुम अनत कालसे ससारकी गाथा लिखते आ रहे हो। तुमने जीवनके अनेक उत्थान-पतन देखे हैं, ध्वस और निर्माण देखे हैं। क्या तुम मेरी गौरव-गाथा सुनाओगे?

इतिहास—गौरव-गाथा सुनोगी?

नारी—हाँ इतिहास, मैं अपने अतीतके गौरवपूर्ण जीवनसे प्रेरणा गहण करना चाहती हूँ, जिससे भविष्यका सुदर निर्माण कर सकूँ।

इसके बाद इतिहास नारीकी गौरव-गाथा सुनाता है। वह स्पष्ट ही एक नैरेटर है, पर उसका नाम बदला हुआ है। ऐसे नैरेटरोमे सामान्य नैरेटरो (स्त्री-स्वर, पुरुष-स्वर, वाचक, वाचिका आदि) की अपेक्षा अधिक मनोरजकता होती है।

अब हम नरेशनकी भाषा-शैलीके बारेमे विचार करे। नरेशनकी सफलता शक्ति उसकी भाषा-शैलीपर ही निर्भर है। इसके लिए सबसे पहले तो हमे यह याद रखना चाहिए कि रेडियोके नरेशन और कहानी-उपन्यासोके नरेशन (कथा-लेखक जो कुछ अपनी ओरसे कहता है, वह नरेशन ही तो है) म काफी अतर है। कहानी-उपन्यास पढनेके लिए लिखे जाते है, रेडियो-नरेशन सुननेके लिए। और, जैसा कि हम देख चुके है, पढने और सुननेकी चीजोमे बहुत अतर है। मन-ही-मन किसी उद्धरणको हम सरलता-से पढ सकते है, पर उसे बोलकर सुनानेमे कठिनाई हो सकती है। इसलिए शब्दोका सयोजन इस प्रकार होना चाहिए कि अभिनेताओको उन्हे बोलनेमे कठिनाईका अनुभव न हो। उदाहरणके लिए यदि किसीको कहना पडे—'यह बात तो पहलेसे कही ही हुई है', तो वह अतिम चार शब्दोको सरलता-से नही कह सकेगा। यद्यपि यहाँ कोई कठिन शब्द नही है, पर शब्दोका सयो-जन ठीक ढगसे नही हुआ है।

अभिनेता किसी नरेशनको सरलतासे पढ सके, इसके लिए यह भी आव-श्यक है कि विराम आदि चिह्नोपर पूरा ध्यान रखा जाय, वाक्य सरल हो और उनमे ऐसे स्थल हो, जहाँ अभिनेता तनिक रुककर साँस ले सके।

इसी प्रकार वाक्योंके सयोजनपर भी ध्यान देना चाहिए। वाक्योका सगठन इस प्रकारका होना चाहिए कि उनका अर्थ एक बार सुननेपर समझमें आ जाय। चूँकि श्रोता पाठककी तरह किसी पुस्तकके पिछले पृष्ठोको फिरसे नही देख सकता, किसी बातको दुहराकर नही सुन सकता, यह ज़रूरी है कि रेडियो-लेखक वाक्योंके सगठनपर ध्यान दे। इस दृष्टिसे सरल वाक्यो का बडा महत्त्व है। श्रोताओकी सुविधाकी दृष्टिसे अनेकार्थ शब्दोंसे भी बचना जरूरी है। अनेकार्थ शब्दोके प्रयोगमे अर्थ समझनेमे कुछ कठिनाई हो सकती है। उद्धरण-चिह्नोका प्रयोग भी अर्थ समझनेमे बाधक होता है।

एक प्रश्न अवश्य है कि नरेशनके वाक्य कितने बडे-बडे हो ? यह वातावरणपर निर्भर है। भावोंके अनुरूप वाक्य बडे और छोटे सब

प्रकारके हो सकते हैं। जैसे, कही करुणाका वातावरण है, तो वहाँ वाक्य मद गतिसे चलनेवाले कुछ लबे-लबे हो सकते हैं, पर जहाँ युद्ध, शक्ति और प्रगतिकी व्यजना करनी है, वहाँ नैरेशन बहुत छोटे-छोटे होगे, वाक्य भी छोटे और तेज गतिसे चलनेवाले होगे। उदाहरण 'रेडियो-रूपक' अध्यायमे दी गई 'अहिंसाकी मूर्त्ति' मे उद्धृत अशमे देखा जा सकता है। वहाँ घटनाओमे गति है, इसलिए वहाके नैरेशन और वाक्य बहुत छोटे-छोटे हैं।

वाक्य छोटे-छोटे ही हो, यह कोई आवश्यक नही, लेकिन इस बातपर ध्यान देना आवश्यक है कि नैरेशनमे भाषाकी सजावटके लिए स्थान नही है। हमें कम-से-कम शब्दोमे अपनी बाते कहनी हैं। यदि हम अलकृत भाषा लिखकर श्रोताओंके मनको मुग्ध करना चाहते हैं, तो यह हमारी भूल है। ऐसा करके हम आगे और पीछेकी घटनाओकी गतिमे बाधा उपस्थित करते हैं। एक उदाहरण द्वारा बात आसानीसे समझी जा सकेगी —

(पृष्ठभूमिमें शोक-सगीत)

आदित्य—(रुक-रुककर, धीरे-धीरे) अब मुझे सन्तोष हो गया करुणा ! इस बच्चेकी ओरसे अब मुझे कोई शका नही है। मैं इसे कुशल हाथोमे छोड़ रहा हूँ (खाँसी) अब मैं सुखसे मर सकता हूँ ! आह ! (खाँसी) आह !

करुणा—नाथ !

आदित्य—क-रु-णा (खाँसी समाप्त)

(शोक-सगीत तेज होकर समाप्त हो जाता है)

नैरेटर—सात वर्ष बीत गये।

स्त्री—बहनजी, कुछ दूध मुझे दीजिएगा ?

करुणा—तुम्हारी ही चीज तो है, खुशीसे ले जाना।

यहाँ नरेशन केवल एक पक्तिका है। इसी नाटकमे यह नैरेटर अगली बार कहता है—'कुछ वर्ष और बीत गये। प्रकाश कालेजमे पहुँच गया।' इन स्थलोपर भाषा-सौंदर्य दिखलानेके लिए अवकाश नही है। मान

लीजिए, कोई कहे—'समय रुकता नही, बढता जाता है। प्रहर दिन और रातमे बदल जाते हैं, दिन और रात महीने बन जाते हैं, और महीने "वर्ष" की छोटी सज्ञामे सिमट जाते हैं। इसी तरह सात वर्ष बीत गये।' इसके साथ ही नैरेशनमे यह भी कहा जा सकता था कि समय किस प्रकार दु ख को भूल जानेमे सहायक होता है, किस प्रकार समयके साथ मनुष्यकी मनो-वृत्तियाँ बदल जाती हैं, और किस प्रकार ये बाते करुणाके जीवनके लिए भी सत्य सिद्ध हुई। लेकिन इन बडे नैरेशनोका कोई उपयोग नही। ये केवल घटनाओकी गतिमे विघ्न ही उत्पन्न करते हैं। जहाँ एक पक्ति ही लिखनेसे काम हो जाय, वहाँ अनेक पक्तियाँ लिखना शब्दोका अपव्यय करना होगा। लियोनेल गैमलिन के शब्दोमे—'The ait of writing a good radio script. indeed, often lies in knowing what *not* to say There is no room for any phrase, even in the lightest conversational passage, which does not play an active part in the forward march of the programme Words in the radio have to work their passage, and one has ofter got to do the office of three or four. There is certainly no room for the merely decorative.' ये बाते केवल नैरेशनके लिए ही नही, बल्कि सलापोके लिए भी सही हैं।

ध्वनि-प्रभाव

ध्वनि-प्रभावका तात्पर्य हास्य, रुदन, वर्षा, बादल, रथ, टेलीफोन, रेलगाडी, मोटर, बदूक, मशीनगन आदिकी ध्वनियोसे है, जिनका व्यवहार रेडियो-नाटक प्रसारित करते समय किया जाता है। प्रत्येक रेडियो-स्टेशनमे ऐसे ध्वनि-प्रभावोके रिकार्ड रखे जाते हैं। कुछ ध्वनि-प्रभाव प्रसरणके समय स्टूडियोमे ही उत्पन्न किये जाते हैं। नाटक-लेखकका इन बातोसे कोई विशेष सबध नही। उसे केवल उचित स्थलपर उचित ध्वनि-

प्रभावका निर्देश कर देना पड़ता है। हाँ, उसे इस बातपर अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि असभव ध्वनि-प्रभावोका प्रयोग न हो जाय।

परिपार्श्व-निर्माणमे ध्वनि-प्रभावोंसे बहुत सहायता मिलती है। रग-मच-नाटकोमे यवनिकापर अकित दृश्यादि परिपार्श्वका काम करते हैं, पर रेडियो-नाटकमे वैसा कोई परिपार्श्व नही होता। रेडियो-नाटकमे ध्वनि-प्रभाव ही यह काम करते हैं। इनसे दृश्योमें एक प्रकारकी घनता आती है, जिससे ज्ञात होता है कि पात्रोका अभिनय शून्यमे न होकर एक ठोस पृष्ठभूमिपर हो रहा है।

वातावरण-निर्माणके लिए ध्वनि-प्रभावोका बड़ा महत्त्व है। रेडियो-नाटकमे आँखोंके सामने कोई प्रत्यक्ष चित्र नही आता, केवल ध्वनियो और शब्दोके द्वारा मानस-चित्र बनते हैं। इस चित्र-निर्माणमें नाटककारकी चित्र-प्रधान शब्द एव ध्वनि-योजना तो काम करती ही है, श्रोताकी कल्पना-शक्तिको भी श्रम करना पड़ता है। रगमच तथा फिल्म-नाटक वातावरण एव परिस्थितिका पूर्ण चित्र स्वत खीच देते हैं, दर्शककी कल्पना-शक्तिको स्वय कोई चित्र-निर्माण नही करना पड़ता। लेकिन रेडियो-नाटक श्रोताकी भावना एव कल्पना-शक्तिको उत्तेजित करता है। यहाँ केवल टेलीफोनकी घटी बजती है, कागजकी खड़खड़ाहट होती है, और आफिसका एक चित्र श्रोताके मानस-पटपर खिच जाता है। इसीलिए रेडियो-नाटककी कलाको सकेतकी कला कहा जाता है। किसी ध्वनि-प्रभावके सकेत मात्रसे उचित वातावरणका निर्माण हो जाता है। विभिन्न अध्यायोमें दिये गये उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी। ध्वनियोंके प्रयोगसे घटनाओकी गतिशीलता किस प्रकार व्यक्त की जा सकती है, इसका उदाहरण 'रेडियो-रूपक'के प्रसगमे 'अहिंसाकी मूर्त्ति' नाटकसे दिया गया है।

अनेक स्थलोपर ध्वनि-प्रभाव अपनेमें पूर्ण एव स्पष्ट नही होते। जैसे, गिलासमे पानी डालनेकी आवाज सुनाई देनेपर भी यह नही मालूम होता कि यह पानी है, शराब है अथवा दवा है। इसी प्रकार ध्वनिसे दिशा

भी नहीं सूचित होती। किसी मोटरकी आवाज सुनाई पडनेपर भी यह ज्ञात नहीं होता कि वह किस दिशासे आ रही है। आवश्यक होनेपर सलापमे उसका निर्देश करना पडता है।

ध्वनि-प्रभावोके सबधमे सबसे पहली बात यह है कि उनका व्यवहार कम-से-कम किया जाय। जैसा ऊपर कहा गया, रेडियो-नाटककी कला सकेतकी कला है। इसलिए उसमे केवल सकेत ही देना चाहिए, पूर्ण विवरण देनेका प्रयत्न करना उचित नही। नाटककारकी कुशलता कम-से-कम, किन्तु प्रभावशाली ध्वनि-प्रभावके चुनावमे है। किसी आफिसके वातावरण-निर्माणके सबधमे ऊपर एक निर्देश हुआ है।

एक ही ध्वनि-प्रभावका बार-बार व्यवहार करना श्रोताओके लिए बहुत अरुचिकर होगा। जितनी बार कोई पात्र घटनास्थलपर जाए और वहाँसे लौटे, उतनी बार उसके पैरोकी आवाज और दरवाजोको खोलने-बद करनेकी ध्वनि अच्छी नही लगेगी। ऐसे ध्वनि-प्रभाव प्रभावशाली नही हो सकेगे। इसीलिए कहा जाता है कि ध्वनि-प्रभावोका व्यवहार कम-से-कम किया जाय। फेलिक्स फेल्टनका कहना उचित ही है कि ध्वनि-प्रभाव जितने कम रहेगे, उतने ही अधिक प्रभावोत्पादक होगे। स्वय उसके शब्दोमे, 'Effects should be effective, and the less they are used, the more effective they are'

यदि किसी स्थलपर अनेक ध्वनि-प्रभावोको काममें लाना अनिवार्य हो, तो एक-एक ध्वनि-प्रभावका बारी-बारीसे व्यवहार करना चाहिए। एक ही बार कई ध्वनि-प्रभावोको काममे लानेसे कोलाहल मच जाएगा और उनसे कोई निश्चित प्रभाव उत्पन्न नही हो सकेगा।

कुछ लोग समझते है कि चूंकि ध्वनि-प्रभाव केवल रेडियो-नाटकोमे ही होते है, वे रेडियो-नाटककी अपनी चीज है और उनका अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। फल यह होता है कि कुछ नाटक केवल ध्वनि-प्रभावोंके लिए ही लिखे जाते है। यह उचित नही है। ध्वनि-प्रभाव तो

केवल साधन है, साध्य है नाटक-द्वारा श्रोताओको प्रभावित करना। इसीलिए ध्वनि-प्रभावोका व्यवहार वही तक होना चाहिए, जहाँ तक वे रेडियो-नाटकके प्रभावमे सहायक हो सके।

कुछ रेडियो-स्टेशनोमे किसी एक नाटकके लिए जो ध्वनि-प्रभाव बन गये, दूसरे नाटकोमे उन्हीका बार-बार उपयोग किया जाता है। श्रोताओंके लिए वैसे ध्वनि-प्रभाव नवीन एव प्रभावोत्पादक नही रह जाते। होना यह चाहिए कि विशेष नाटकोंके लिए विशेष ध्वनि-प्रभावोका ही उपयोग हो।

लुई मैकनीसके अनुसार, ध्वनि-प्रभावोंके सबधमे, अतमे, यही कहा जा सकता है कि इनका व्यवहार तभी करना चाहिए, जब ये नाटकको प्रभावोत्पादक बना सके और व्यावहारिक हो—'In general, a radio writer should only ask for effects when they are (a) practicable, (b) an asset to his story They must not be overused or indulged in for their own sake'

संगीत

सगीतसे तात्पर्य वाद्य-सगीतसे है। यह प्राचीन कालसे ही नाट्य-कला का एक आवश्यक अग रहा है। सगीत स्वय एक ललित कला है, और इसके प्रभावकी तीव्रता सभी कलाओसे अधिक है, इसे कोई अस्वीकार नही करता। रेडियो-नाटकका तो यह एक प्रमुख अग है।

रेडियो-नाटकमे सगीतका व्यवहार दो प्रकारसे किया जाता है—(१) स्वतत्र रूपसे और (२) मलापकी पृष्ठभूमिके रूपमे।

सगीतका स्वतत्र रूपसे व्यवहार नाटकके प्रारभ और अतमे होता है। नाटकके प्रारभमें आनेवाला मगीत नाटककी भावात्मक विषय-वस्तु (theme) का प्रतीक होता है, और वह आगेकी घटनाओंके लिए वातावरण निर्मित करता है। प्रारभका आकर्षक मगीत नाटकके प्रति श्रोताओ-

की उत्सुकता जगा सकता है। अतका सगीत नाटककी समाप्तिकी सूचना देता है। उससे नाटककी पूर्णताका बोध होता है। सगीतके द्वारा दृश्य-परिवर्त्तन किया जा सकता है। रगमचपर दृश्य-परिवर्त्तनके लिए पर्दे होते है, पर रेडियो-नाटकमे दृश्यके अतमे सगीत दे दिया जाता है, और दृश्य परिवर्तित हो जाता है। फिर कथनोपकथन तथा ध्वनि-प्रभावके द्वारा नया दृश्य उपस्थित किया जाता है। दृश्य-परिवर्त्तनके लिए रेडियो-नाटकमे एक और उपकरण है—शाति। दो दृश्योके बीचमे कुछ सेकेडोके लिए शाति रहने दी जाती है, जिससे दृश्य परिवर्तित समझा जाता है।

एक दूसरे प्रयोजनके लिए भी सगीतका स्वतत्र रूपसे व्यवहार किया जाता है। वह है घटनाओकी शृखलाएँ जोडना और गति सूचित करना। अगर दृश्य कही वडी शीघ्रतासे वदलते हो, तो वाद्य-सगीत-द्वारा इसकी व्यजना की जा सकती है। 'कहानियोके रेडियो-रूपातर'के प्रसगमे इस तरह का एक उदाहरण 'गोटेकी टोपी'के रूपातरसे उद्धृत अशमे आया है। सगीत-द्वारा गति किस प्रकार सूचित की जाती है, इसका उदाहरण 'वे अभी भी क्वाँरी है'के प्रारभिक अशमे देखिए।

दृश्य-परिवर्त्तनका सगीत वहुत सक्षिप्त होना चाहिए, जिससे नाटककी गतिमे किसी प्रकारकी वाधा न उपस्थित हो। साथ ही नाटक तथा उसके दृश्योमें अभिव्यक्त भावनाओके साथ उसका पूर्ण सामजस्य होना चाहिए।

स्थान-स्थानपर प्रतीकात्मक सगीतका भी उपयोग किया जा सकता है। प्रतीकात्मक सगीतसे तात्पर्य है उस सगीतसे, जो किसी विशेष भावना, विशेष व्यक्ति अथवा विशेष स्थानको सूचित कर सके। 'नोआखाली-यात्रा' काव्य-रूपकमे 'रघुपति राघव राजा राम'की धुन-द्वारा विभिन्न स्थानोपर महात्मा गाँधीकी उपस्थिति सूचित की गई थी।

पृष्ठभूमि सगीतसे अनेक प्रयोजन सिद्ध किये जाते है। सगीतमे भावोद्दीपनकी अद्भुत शक्ति है। सलापके पीछे भावानुरूप सगीतकी योजना करके सलापके प्रभावको तीव्र वनाया जा सकता है। पर उचित स्थल-

पर उचित सगीतके व्यवहार-द्वारा ही यह कार्य सभव है। करुण-स्थलपर करुणा-व्यजक सगीत ही प्रभावोत्पादक होगा। भावोद्दीपनके साथ-साथ भाव-परिवर्तनका काम भी सगीतके-द्वारा किया जाता है। अगर पात्रके हृदयमे एक भावके बाद दूसरे प्रकारका भाव आ रहा हो, तो सगीतके प्रकार-मे परिवर्तन करके इसे व्यजित किया जा सकता है। यदि किसी पात्रके मनमें दो भावनाओका सघर्ष चल रहा हो, तो सगीत-द्वारा इसे सूचित किया जा सकता है।

ध्वनि-प्रभावकी भाँति वातावरण-निर्माणके लिए भी सगीतका उपयोग होता है। यदि कोई आनन्दपूर्ण प्रसग चल रहा हो, प्राकृतिक सौंदर्यका दृश्य उपस्थित किया जा रहा हो, तो पृष्ठभूमि-सगीत उचित वातावरण का निर्माणकर उन प्रसगोको सजीव बना देता है।

पृष्ठभूमि-सगीत-द्वारा वातावरणका निर्माण तो होता ही है, नीरस प्रसगोको सरस बनाया जा सकता है। इसका एक उदाहरण 'मिथिला' रूपकसे देखिए—

(पृष्ठभूमिमें शास्त्रीय वाद्य-संगीत)

पुरुष—मिथिला गीतोका देश है।

स्त्री—लोग कहते भी हैं—'तिरहुति गीत वड़ए अनुराग।'

पुरुष—सगीतकी साधनामे मिथिलाकी सगीत-प्रिय जनताके हृदयका स्पदन है।

स्त्री—उसमे स्त्रियोने योग दिया है।

पुरुष—पुरुषोने भी।

स्त्री—हिंदुओने भी स्वर-सधान किया है।

पुरुष—मुसलमानोने भी।

स्त्री—दोनो मिलकर सगीतकी साधना करते आ रहे हैं।

(शास्त्रीयसगीत तेज होकर धीरे-धीरे मद हो जाता है, तब धीरे-धीरे लोकसगीतकी धुन प्रारभ होती है, जो पृष्ठभूमिमें चलती रहती है।)

पुरुष—परंपरासे आती हुई लोकगीतोंकी मधुर रागिनी भी उनके मनको प्रमुदित करती रहती है।

स्त्री—गीतोंकी यह धारा निश्छल मानव-हृदयमे निकलकर युगोंसे मिथिलाकी धरतीपर प्रवाहित हो रही है।

पुरुष—मिथिलाके इन लोकगीतोंमे बडी मार्मिकता है।

स्त्री—इनमे जीवनकी सब प्रकारकी भावनाएँ व्यक्त हुई है। इनकी रागिनीमे आँखोंके आँसू मुस्काते है, इनकी तानोंमे आनन्दकी गूँज सुनाई पडती है।

और, इस प्रकार संगीतकी पृष्ठभूमिपर नैरेशन चलता रहता है।

भावावेग और भावावेशके कार्योंकी व्यंजना पृष्ठभूमि-संगीत-द्वारा बडी अच्छी तरह होती है। उदाहरणके लिए, यदि कोई भावावेशमें किसीको खोज रहा हो, दौडता हो, रुक जाता हो, फिर दौडता हो, तो इन सभी कार्योंको संगीत सूचित कर सकता है। इससे गतिकी अभिव्यक्ति तो होती ही है, पात्रोंकी मनोदशाका भी परिचय मिलता है।

कभी-कभी ध्वनि-प्रभावोंके साथ पृष्ठभूमि-संगीतकी योजना करके तीव्र प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। युद्ध अथवा आँधी-तूफानके ध्वनि-प्रभावोंके साथ उन्हे प्रभावशाली बनानेवाला संगीत भी दिया जाता है।

जो नाटक किसी संगीतज्ञके जीवनपर आधारित होते है, उनके लिए तो संगीत एक अनिवार्य अंग हो जाता है। पर वैसे नाटकोंमे संगीतकी सीमा पर ध्यान देना चाहिए, नाटकपर संगीत इस प्रकार न छा जाय कि समूची नाटकीयता ही समाप्त हो जाय।

संगीतके व्यवहारसे ऐतिहासिक कालकी भी सूचना मिलती है। प्रत्येक युगका अपना विशेष संगीत होता है। आधुनिक युद्ध-संगीत प्राचीन युद्ध-संगीतसे सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार संगीत-द्वारा विशेष ऐतिहासिक कालका संकेत दिया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त संगीत और कौन-से प्रयोजन सिद्ध कर सकता है, यह हम 'रेडियो-नाटक सीमाएँ और सम्भावनाएँ' शीर्षक अध्यायके अन्तर्गत देख चुके है।

संगीतकी योजना तो प्रस्तुतकर्त्ता (Producers) ही करते हैं, लेखक केवल संगीतके स्थलका निर्देश करता है। हाँ, लेखकको नाटक लिखते समय अपनी कल्पना और अनुभवके बलपर यह सोच लेना चाहिए कि संगीत कहाँ अनिवार्य और प्रभावशाली होगा। संगीतके-द्वारा वह जो प्रयोजन सिद्ध करना चाहता हो, उसका उल्लेख उसे उचित स्थानपर कर देना चाहिए।

संगीत रेडियो-नाटकका बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है, पर इसका उपयोग बहुत सोच-समझकर और उचित स्थलोंपर ही होना चाहिए। लुई मैकनीस-ने ध्वनि-प्रभावकी ही तरह संगीतके विषयमें कहा है कि जहाँ तक संगीत नाटकके प्रयोजनको सिद्ध कर सके, वहीं तक उसका उपयोग होना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि वही प्रधान हो जाय, और नाटकको संगीत-सम्मेलनमें बदल दे। स्वयं उसके शब्दोंमें—'The music, though much more conspicuous, must still be strictly functional, subordinated to the dramatic purpose of the whole, the music must not attempt to usurp the primary role and turn the whole thing into a concert'

रेडियो-नाटकके प्रकार

रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटक अनेक प्रकारके होते हैं। विषय-वस्तुके अनुसार तो उनके भेदोंकी संख्या अगणित हो जाएगी, जिनसे हमारा यहा कोई प्रयोजन नही है। शिल्पकी दृष्टिसे विचार करें, तो रेडियो-नाटकके सात भेद हमारे सामने आएँगे—

१–नाटक, २–रूपक, ३–रूपातर, ४–फंटेसी, ५–मोनोलॉग, ६–संगीत-रूपक, और ७–झलकियाँ।

रेडियो-नाटकके ये सभी रूप गद्यमे भी होते है, पद्यमे भी। कुछ नाटकोमे गद्य और पद्य दोनोका सम्मिलित उपयोग किया जाता है। इन सभी रूपोपर अलग-अलग विचार करना उचित होगा।

रेडियो-नाटक

'रेडियो-नाटक' शीर्षक तो बहुत व्यापक है। इसके अतर्गत, जैसा अभी ऊपर कहा गया, रेडियो-नाटकके सभी प्रकार चले आते है, लेकिन यहाँ हम केवल उन्ही रचनाओंके सबधमे विचार करेगे, जिन्हे 'रेडियो-रूपक', 'रेडियो-फंटेसी' आदि नाम न देकर 'रेडियो-नाटक' ही कहा जाता है। रूपक, फंटेसी आदिकी विशेषताएँ समझ लेनेके बाद स्वत ज्ञात हो जाएगा कि 'रेडियो-नाटक'से क्या तात्पर्य है। ऐसे नाटक रगमचके नाटकोसे बहुत समानता रखते हुए भी मात्र श्रव्य होते है। यह सभव है कि इस सबध-मे जो बाते कही जायँ, वे रेडियो-नाटकके दूसरे प्रकारोके लिए भी सही हो।

सबसे पहले हम रेडियो-नाटककी विषय-वस्तुके सबधमे विचार करेगे। पहला प्रश्न जो किसी नाटककारके मनमे उठता है, वह यह कि वह अपने नाटकमे क्या लिखे, किस विषयपर लिखे, कैसे लिखे, यह तो बादका

प्रश्न है। इस प्रश्नके उत्तरमे कहा जा सकता है कि रेडियो-नाटककारके लिए विजयका कोई बधन नही है, वह मानव-जीवन और जगत्मे सवविन किसी भी विषयको अपने नाटकका आधार बना सकता है, फिर भी उसे कुछ बातोपर अवश्य ध्यान देना पडेगा। पहली बात तो उसे यह समझनी होगी कि रेडियो-नाटक विभिन्न रुचियोंके लोग सुनते हैं। यदि रगमचपर कोई धार्मिक लीला हो रही है, तो उसे देखने केवल धार्मिक प्रवृत्तिके ही लोग जाएँगे, लेकिन रेडियो-नाटक सुननेवाले व्यक्ति घर बैठे ही नाटक सुनते हैं, और यदि नाटक उनकी रुचिके अनुकूल न हुआ, तो वे रेडियो-सेट शीघ्र ही बद कर देगे। अत यदि रेडियो-नाटककार चाहता है कि अधिक-से-अधिक व्यक्ति उसका नाटक सुने, तो उसे अपनी विषय-वस्तु ऐसी रखनी पडेगी, जो विश्वजनीन हो, जो किसी दल, जाति, धर्म आदिके सीमित बधनोमे ही न घिरी हो। यदि वह मूल मानवीय राग-विरागोको अपने नाटकका विषय बनाये, तो वह सफल हो सकता है। उदाहरणके लिए, यदि वह दिखलाये कि किस प्रकार मनुष्यके हृदयमे कर्तव्य और भावनाका सघर्ष होता है, किस प्रकार मनुष्यके हृदयमे प्रेम, घृणा, ईर्ष्या आदिकी भावनाएँ उठती है, तो वह अपने नाटकको अधिक-से-अधिक व्यक्तियो तक पहुँचा सकेगा। इसके लिए वह अपनी कथा इतिहास, पुराण अथवा वर्तमान सामाजिक जीवन, कहीसे ले सकता है।

इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटककार उन समस्याओको भी अपना विषय बना सकता है, जिनमे अधिक लोगोकी दिलचस्पी है। युद्ध, वर्तमान सामाजिक कुरीतियो आदिपर भी बडे सदर नाटक लिखे जा सकते है, लेकिन यहाँ भी यह याद रखना होगा कि ऐसे नाटकोमे भी जबतक मनुष्यके राग-विरागोका अकन न होगा, तबतक वे लोगोंके मर्मको न छू सकेंगे। मनुष्यके राग-विरागोकी सूक्ष्म तरगोको पकडना कविका ही काम है। इसीलिए लुई मैकनीसने कहा है कि रेडियो-नाटक लिखनेके लिए कविकी दृष्टि चाहिए—'For man, we should always

remember is born poetic. Poetry, in this sense at least is more primitive than prose, it was easier on the ear and less strain upon the mind That is why radio drama—not because the medium is new but because of its primitive audience—might reasonally be expected to demand a poet's approach And poets on the whole do seem more at home on the air than novelists, say, or essayists'

मानवीय अनुभूतियाँ और मानवीय भावनाएँ ही नाटककी विषय-वस्तु बनाई जायँ, पर नाटकमे उन्हे इस प्रकार रखा जाय कि वह कुछ असाधारण-सा लगे। हम जानते है कि जिन विषयोसे हम बहुत अधिक परिचित हो जाते हैं, उनकी नवीनता समाप्त हो जाती है, फलतः वे हमारा ध्यान आकृष्ट नही करती। यही बात नाटकके विषयोके साथ भी है। हम प्रतिपल कोई नई चीज़ चाहते हैं। जो नाटक हमारी इस आकाक्षाको तृप्त करेगा, वही सफल होगा। इसके लिए आवश्यक है कि नाटककार सामान्य विषय-वस्तुको भी असामान्य परिस्थितियोमे रखकर उपस्थित करे।

चूँकि हम लोगोंके यहाँ जो नाटक लिखे जाएँगे, उनका उपयोग ऑल इडिया रेडियोमे ही होगा, नाटककारको आल इडिया रेडियोकी नीतिसे परिचित होना चाहिए। ऐसे विषयोंसे भरसक बचनेका प्रयत्न करना चाहिए, जिनके सबबमे वाद-विवाद हो अथवा जिनसे किसी मत, धर्म, सम्प्रदाय या दलका विरोध होता हो। अश्लील एव भारतीय सस्कृतिकी विरोधी विषय-वस्तुको भी यहाँ प्रश्रय नही दिया जाता। ऑल इडिया रेडियोकी नीतिसे सबधित एक और बात यही कह दी जाय। ऑल इडिया रेडियो द्वारा किसी कपनी, समिति, पेटेंट सामान आदिका प्रचार नही किया जाता। अत ऑल इडिया रेडियोके लिए लिखित नाटकोमे 'लीडर' 'पिट् होटल', 'पनामा ब्लेड'—जैसे नामोको नही आने देना चाहिए। इनके स्थानपर कल्पित नामोका सहारा लेना चाहिए।

सफल रेडियो-नाटककी पहली आवश्यकता है एक अच्छी कहानी। जबतक कथानक सशक्त न होगा, तबतक नाटक श्रोताओंको प्रभावित न कर सकेगा। सशक्त कथानकका तात्पर्य ऐसे कथानकसे है, जो श्रोताओंकी जिज्ञासा अंततक जगाये रख सके। यह कलाकारकी प्रतिभापर निर्भर है कि वह कैसे कथानकका निर्माण करता है। इसके लिए कोई एक नियम नहीं दिया जा सकता। नाटककारको ध्यान इसी बातपर रखना है कि नाटकका घटनाक्रम सुसबद्ध हो, उसमें कहीं ढीलापन न हो। उपन्यास, कहानियों और रंगमंच-नाटकोंमें कुछ ढीलापन रहे, तब भी काम चल सकता है, पर रेडियो-नाटकमें नहीं। इसकी अवधि सीमित होती है, पात्र अदृश्य होते हैं, इसलिए इसका कथानक इतना शृंखलाबद्ध होना चाहिए कि इसका प्रभाव तीरकी तरह हो। कथानकका एक केन्द्रबिंदु होना चाहिए, जो श्रोताओंके मर्मपर आघात कर सके। यह तभी संभव है, जब घटनाएँ इधर-उधर न बिखरें, सीधी गतिसे चलें, स्पष्ट शब्दोंमें, रेडियो-नाटकमें अप्रासंगिक कथानक एवं घटनाओंके लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें कोई भी घटना ऐसी न आनी चाहिए, जो मूल घटनाकी गतिको आगे न बढ़ाये, उसकी सहायता न करे। हमें यह हमेशा याद रखना है कि रेडियो-नाटककी कला गतिशीलताकी कला है, गति ही इसका प्राण है। दृश्य-नाटकोंमें स्थिर एवं गतिहीन उपकरणोंसे भी काम चल जा सकता है, क्योंकि अपनी आँखोंसे हम उन्हें देखते रहते हैं, पर रेडियो-नाटकमें इनका कोई महत्त्व नहीं है। नाटकोंमें गत्यात्मकताका यह गुण तभी आ सकता है, जब छोटे-छोटे और गतिशील दृश्योंका नियोजन किया जाय।

रेडियो-नाटककी नाटकीय एकता कभी भंग नहीं होनी चाहिए। ऐसा करनेका उपाय यह है कि नाटककार सबसे पहले अपने कथानकको संक्षेपमें लिख ले और यह देख ले कि उसकी सभी कड़ियाँ एक दूसरेसे अच्छी तरह जुड़ी हुई हैं, और उनमें श्रोताओंकी जिज्ञासा बनाये रखनेकी पर्याप्त शक्ति है। इस संक्षिप्त कथानकके आधार पर नाटककारके मनमें समूचे नाटकका, प्रारम्भसे अन्त तक, एक साफ ढाँचा

रहना चाहिए। उसे यह भी सोच लेना चाहिए कि किस दृश्यके लिए कितना समय देना उचित होगा। कहानी, उपन्यास आदिका लेखक इन बातोंपर बिना विचार किये लिखना प्रारंभ कर सकता है, और तबतक लिखता चला जा सकता है, जबतक उसकी रचना समाप्त न हो जाय। लेकिन रेडियो-नाटककी सीमा पहलेसे निर्धारित है। यदि नाटककार आधे घंटेके लिए कोई नाटक लिख रहा है, तो उसे अपनी लिखावट और अपने अनुभवके आधारपर मालूम है कि उसे चौदह, पंद्रह या सोलह पृष्ठोंमें नाटक समाप्त कर देना है। वह इससे न एक पृष्ठ कम लिख सकता है, न एक पृष्ठ अधिक। इसीलिए रेडियो-नाटककारके मनमें समूचे नाटकका ढाँचा पहलेसे ही तैयार होना चाहिए, जिससे सभी दृश्य अपने-अपने स्थानपर नपे-तुले हों, और नाटक एक संतुलित रचना बन सके।

कथानक-निर्माणके समय लेखकको इस बातपर ध्यान देना है कि उसकी कथा-वस्तु श्रव्य माध्यमसे भलीभाँति व्यक्त की जा सके। उदाहरण-के लिए अंतमें दिया गया नाटक 'संघर्ष' देखा जा सकता है। उसमें एक कलाकारकी समस्या अंकित है। वह कलाकार चित्रकार भी हो सकता था, पर नाटकमें उसे शिल्पी रखा गया है। छेनी-हथौड़ेके ध्वनि-प्रभावोंके द्वारा शिल्पीकी कथा रेडियो-नाटकमें प्रभावोत्पादक बनायी जा सकती है।

कथानक बन जानेके बाद सोचना आवश्यक है कि किस प्रकार उसे नाटकमें उपस्थित किया जाय, जिससे वह अधिक-से-अधिक प्रभावोत्पादक हो सके। रेडियो-नाटकका प्रारंभ ही इस प्रकारका होना चाहिए कि कुछ पंक्तियाँ सुननेके बाद ही श्रोताका मन उससे उलझ जाय और वह आगेकी बातें सुननेके लिए उत्सुक हो उठे। यह सफल रेडियो-नाटककी बहुत बड़ी विशेषता कही जायगी। इसके बाद घटनाओंकी गति भी बड़ी सीधी और सरल होनी चाहिए, उसमें किसी प्रकारकी ऐसी उलझन न हो, जिससे श्रोताओंको नाटकका विकासक्रम समझनेमें कठिनाई हो। लियोनेल गैमलिनने नये रेडियो-नाटककारोंको सलाह दी है कि वे गति, सरलता और कल्पनापर ही अपने नाटकोंको आधारित रखनेका अभ्यास करें।

रेडियो-नाटकमे पात्रोके चरित्राकनपर भी विशेष ध्यान देना पडता है। पात्रोंके-द्वारा ही रेडियो-नाटककार श्रोताओको प्रभावित करता है। पात्रोके विषयमे पहली बात यह है कि उनपर हम सहज ही विश्वास कर सके। वे पात्र हाड-मासके सजीव मनुष्य हो, जिनमे विश्वास-सृष्टिकी पर्याप्त शक्ति हो। दूसरी बात यह कि पात्रोके चरित्रकी रेखाएँ साफ-साफ उभरी हुई होनी चाहिएँ। प्रत्येक पात्रकी अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ प्रदर्शित की जाएँगी, तभी रेडियो-नाटक सफल हो सकेगा। यह काम बहुत कठिन है। हमारे यहाँके अधिक रेडियो-नाटकोमे ऐसा नही हो पाता। श्री कृष्ण शुगलू ऑल इडिया रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटकोके विषयमे लिखते हैं—'A complaint often voiced by our actors and producers is that there is little characterisation in the scripts given to them The characters which they are supposed to portray and interpret, they say, are cliches which do not respond to the events around them Our actors want characters with three dimensions and a soul, just as our producers are keen on scripts which can be translated into sound and sound-patterns' (Aspects of Broadcasting in India) उनके अनुसार हमारे यहाँके नाटकोंमें चरित्राकनपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। सफल रेडियो-नाटककारके लिए इसपर ध्यान देना आवश्यक है। चरित्रोका विकास इस प्रकार होना चाहिए कि वे अपनी परिस्थितियोमे स्वत उद्भूत जान पडे, उनकी बातें प्रत्येक स्थितिमे स्वाभाविक ज्ञात हो। पात्रोकी एक-एक उक्ति, एक-एक क्रिया-द्वारा उनके चरित्रोपर प्रकाश पडना चाहिए। चूंकि रेडियो-नाटकको अपनी सीमित अवधिमें ही सब-कुछ करना पडता है, उसकी कोई भी पक्ति अथवा घटना निरर्थक नहीं

जानी चाहिए। उनकी सार्थकता इसीमे है कि घटनाओकी गतिमे सहायता मिले और पात्रोका चरित्राकन हो।

रेडियो-नाटकके पात्रोके सबधमे एक बात यह भी याद रखनेकी है कि अधिक पात्रोके जमघटसे अनेक उलझने उत्पन्न हो जाती है। किसी पात्रका चरित्राकन अच्छी तरह नही हो पाता, श्रोताओके लिए सब पात्रोके नाम याद रखना और उन्हे पहचानना कठिन हो जाता है। ये असुविधाएँ इसलिए होती है कि रेडियो-नाटकके पात्र अदृश्य होते है। अत आवश्यक है कि रेडियो-नाटकमे कम-से-कम पात्र रखे जायँ। साथ ही पात्र ऐसे हो कि उनकी आवाज और उनके बोलनेके ढगसे ही श्रोता उन्हे पहचान ले। अच्छा तो यह होगा कि पात्रोकी कल्पना ध्वनिके आधारपर ही की जाय। हम प्रतिदिन देखते है कि मनुष्योकी चारित्रिक वैयक्तिकता उनकी आवाज, बोलनेके ढग आदिसे प्रकट होती है। रेडियो-नाटककारका ध्यान इस बातपर विशेष रूपसे जाना चाहिए। तात्पर्य यह कि पात्रोमे जितनी अधिक व्यक्तिगत विशेषताएँ रहेगी, वे उसी हदतक नाटकको सफल बनानेमे समर्थ हो सकेंगे।

नाटकका एक आवश्यक अग कथनोपकथन भी है, जिसपर 'रेडियो-नाटकके उपकरण' अध्यायमे विस्तारके साथ विचार किया गया है।

रेडियो-नाटकके शीर्षकपर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है। श्रोता सबसे पहले शीर्षक ही तो सुनता है। इसलिए शीर्षक इतना आकर्षक होना चाहिए कि वह श्रोताओकी जिज्ञासा जगा दे। उदाहरणके लिए, अतमे दिये गये नाटकका शीर्षक देखिए—'वे अभी भी क्वाँरी है।' इसे सुनते ही श्रोताकी उत्सुकता जग जाएगी, वह जानना चाहेगा कि किसकी और कैसी कहानी है।

रेडियो-रूपक

'रेडियो-रूपक' नामसे हिंदीमे अनेक प्रकारकी रचनाएँ लिखी जा रही है। इन रचनाओमे किसी एक निश्चित स्वरूप-विधानके दर्शन नही होते, पर एक बात इन सबमे सामान्यत यह दिखायी पडती हे कि इनमे एक या एकसे अधिक नैरेटर (जिन्हे वाचक, वाचिका, पुरुप-स्वर, स्त्री-स्वर आदि नाम दिये गये है) होते है, जो बिखरी हुई घटनाओकी कडियाँ जोडते है, दृश्यो-परिस्थितियो आदिके विवरण देते है, किसी विषयपर वाद-विवाद करते है, कोई कथा कहते है, या ऐसे ही दूसरे-दूसरे प्रयोजन सिद्ध करते है। चूँकि ये नैरेटर किसी-न-किसी रूपमे सब रूपकोमे होते है, यह समझ लिया जाता हे कि जिन नाटकोमे नैरेटर होते है, वे सब रूपक है, पर बात वास्तवमे यह नही हे। 'रेडियो-रूपक'के स्वरूप-विधान और विशेषताओपर विचार करनेके पहले 'रेडियो-रूपक' नामके सबधमे विचार कर लेना उचित होगा।

'रेडियो-रूपक' नाम बहुत भ्रामक है। इसमे आये 'रूपक' शब्दसे भ्रम होता है कि इसका सबध प्राचीन नाट्य-शास्त्रके 'रूपक' (जो दृश्य-काव्यका पर्याय था, और 'नाटक', 'नाटिका' आदि जिसके प्रधान भेदोमे थे) से है। इस दृष्टिसे कुछ लोग यह भी सोचते है कि रेडियोसे प्रसारित होनेवाले सब नाटक 'रेडियो-रूपक'के अतर्गत आ जाएँगे। पर यह मात्र भ्रम है। 'रेडियो-रूपक'का प्राचीन नाट्य-शास्त्रके 'रूपक'से कोई सबध नही है। वास्तवमें 'रेडियो-रूपक' शब्द अँग्रेजीके 'रेडियो-फीचर' (Radio Feature) के लिए व्यवहृत किया जा रहा है, यद्यपि यह कह सकना कठिन है कि 'फीचर'का अनुवाद 'रूपक' क्यो, कब और कैसे किया गया। अब तो 'फीचर'के लिए 'रूपक' शब्द रूढ हो गया है। अत 'रूपक'की विशेषताओको समझनेके लिए 'फीचर'के विषयमे जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा।

बी० बी० सी०मे 'फीचर' नाम 'डॉकुमेंट्री' (यथातथ्य घटनाओंपर आधारित नाटकीय रचना) के लिए व्यवहृत होता है। "फीचर" नामसे लिखी जानेवाली रचनाओंका अपना इतिहास है। आजसे लगभग पच्चीस वर्ष पहले बी० बी० सी०मे 'फीचर' नामकी रचनाएँ नही होती थी, लेकिन बी० बी० सी०का नाटक-विभाग रेडियो-टेकनीकके सबधमे नये-नये प्रयोग कर रहा था। उसे विशेष अवसरोंके लिए विशेष कार्यक्रमोका आयोजन करना पडता था—ठीक वैसे ही, जैसे प्रजातन्त्र-दिवस, रवीन्द्र-जयन्ती, 'प्रसाद'-दिवस आदि विशेष अवसरोंके लिए ऑल इण्डिया रेडियोके विभिन्न स्टेशनोसे विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाते है, और, जिस प्रकार इन विशेष कार्यक्रमोकी सूचनाएँ 'Radio Highlight' या 'विशेष कार्यक्रम' शीर्षकोसे समाचारपत्रोमे दी जाती है, उसी प्रकार बी० बी० सी० के विशेष कार्यक्रमोकी सूचनाएँ पत्रोमे निकलती थी। इस तरह विशेष कार्यक्रमोको सामान्य कार्यक्रमोकी अपेक्षा अधिक प्रधानता दी जाती थी, और इन्हे लोग 'Featured Programme' कहते थे। बोलचालमे 'Featured' के 'd' का लोप हो गया, और लोग उसे 'Feature Programme' कहने लगे। पहले 'फीचर प्रोग्राम' का अर्थ वहाँ 'विशेष कार्यक्रम' ही था, लेकिन धीरे-धीरे उसके अतर्गत वे सभी रचनाएँ आने लगी, जो रेडियो-टेकनीककी दिशामें कुछ नये प्रयोगोंके लिए लिखी जाती थी। इन प्रयोगशील कार्यक्रमोका झुकाव कल्पना-प्रधान रचनाओकी ओर कम, और तथ्य-प्रधान रचनाओंकी ओर अधिक था। उन्ही दिनो ग्रेटब्रिटेनमे डॉकुमेंट्री फिल्मोका विकास हुआ, और रेडियोके फीचर प्रोग्रामोसे सबद्ध कुछ व्यक्ति उनका अनुकरण करने लगे। वे आवाज़को रिकार्ड करनेवाली मशीनोंके द्वारा यथातथ्य घटनाओंके रिकार्ड तैयार कर लेते, और उन्हीके आधारपर नाटकीय रचनाएँ लिखकर प्रसारित करते। ये नये प्रकारकी रचनाएँ,

---

१ "Documentaries are known in the B. B C as Features' "

—Felix Felton

जिन्हे 'रेडियो-डॉकुमेंट्री' कहा जाता था, वडी आकर्पक थी। फलत इस दिशामे अनेक प्रयोग होते रहे, और अव तो इनकी टेकनीक इतनी अधिक विकसित हो चुकी है कि वी० वी० सी०मे नाटक-विभागसे पृथक् इनके लिए एक अपना स्वतत्र विभाग हे। तो, 'फीचर'का यही इतिहास है। यथातथ्य घटनाओ एव सूचनाओपर आवारित नाटकीय रचनाओ को ही अग्रेजीमें 'फीचर' कहा जाता हे, और 'फीचर'को ही हमलोग हिंदीमे रूपक कहने लगे हैं (कुछ लोग इन्हे 'आलेख-रूपक' या 'वस्तु-रूपक' भी कहते हैं), यद्यपि यथार्थत 'फीचर' कही जानेवाली रचनाएँ इनी-गिनी ही मिलेंगी। वी० वी० सी० के पच्चीस वर्पोके परिश्रमकी उपलब्धिको इतनी जल्दी प्राप्त कर लेना शायद सभव भी नही था। हमारे यहाँ अभी साधनोका अभाव है। हमारे यहाँके रेडियो-स्टेशनोमे रूपकोके लिए स्वतत्र विभाग भी नही हैं। उनके प्रसरणमे आर्थिक व्यय भी अधिक पडता है। लेखक भी उनकी टेकनीकसे अभी पूर्णत विज्ञ नही हैं। इस दिशामे जव सवका ध्यान जाएगा, तभी रूपकोंकी कलाका विकास हो सकेगा।

अव हमे देखना चाहिए कि वास्तवमे रूपक हे क्या? लुई मैकनीसने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है–'The radio feature is a dramatised presentation of actuality but its author should be much more than a repporteur or a camera-man, he must select his actuality material with great discrimination and then keep control of it so that it subserves a single dramatic effect'

तात्पर्य यह कि रूपक वास्तविकता का नाटकीकृत रूप हे। वास्तविकताका मतलव यहाँ प्रधानत वास्तविक घटनाओ और तथ्योंसे है। नाटककार, कहानीकार आदि कलाकार कल्पित घटनाओंको अपनी रचनाओंका आधार वनाते है, यद्यपि उनके माध्यमसे व्यक्त विषय-वस्तु

अवास्तविक नही कही जा सकती, वह भी हमारे जीवनकी ही झांकी है। लेकिन रूपककारके लिए आवश्यक है कि वह वास्तविक घटनाओंके आधार-पर ही अपने रूपककी रचना करे। यह बात एक-दो उदाहरणों-द्वारा सरलतासे समझी जा सकती है। यदि रूपककार मिथिलाके लोक-जीवनपर कोई रूपक लिख रहा हो, तो उसे वहांके लोगोंकी बातचीत, उनके गीत आदिके रिकार्ड तैयार कर लेने पड़ेंगे, जिनसे वहांके लोक-जीवनका वास्तविक परिचय वहांके लोगोंके शब्दोंमे प्राप्त हो सके। यदि रूपककार दामोदर नदीकी योजनापर कोई रूपक लिखना चाहे, तो उसे उस योजना-मे लगे हुए लोगो, उस क्षेत्रमे रहनेवालो आदिके विचार उन्हींके शब्दोंमे प्राप्त करने होंगे (यह काम उन लोगोंसे बातचीत करके और उसका रिकार्ड तैयार करके किया जाता है)। डोनल्ड बोज़ने रूपककारोंके लिए यही बात कही है—'What you are setting out to do is to extract in mint condition the thought at the back of the speaker's mind and mint condition means—his own words' इससे स्पष्ट है कि यह काम मात्र लेखकोंके लिए असभव है। रेडियो-स्टेशनके अधिकारियो और लेखकोंके सहयोगसे ही सफल रेडियो-रूपक प्रसारित हो सकते है।

अपने यहांके रेडियो-स्टेशनोंकी वर्त्तमान स्थितिमे इस प्रकारके रूपको-का लिखा जाना एक प्रकारसे असभव दीखता है। और, आजकल वर्त्तमान समस्याओ, योजनाओ आदिपर जैसी डाकुमेंट्री फिल्मे हमारे यहाँ बनती हैं, वैसी रेडियो-डॉकुमेंट्री सचमुच ही असभव है। इससे ज्ञात होता है कि रेडियो-रूपकका क्षेत्र बहुत सीमित है, सीमित तो है ही, पर साधनोंके अभावमे रूपक-रचनाके नये मार्ग खोजे गये है। लियोनेल गैमलिनने रेडियो-रूपकके विषयमे लिखा है—'Quite simply, it's a near-relation of the documentary film Based on actual fact, it is presented in dramatic form with real people as the actors, or sometimes with professio-

nal actors re-creating the characters of the original story or incidents '

इसके अनुसार वास्तविक व्यक्तियोंके वदले कभी-कभी अभिनेताओंसे काम लिया जा सकता है। गैंमलिनने 'कभी-कभी' सभवत इमलिए कहा है कि कुछ रूपकोमे वास्तविक व्यक्तियोको अभिनेताके रूपमे उपस्थित करना हमेशा सभव नही होता। ऐतिहासिक रूपकोमे तो वास्तविक व्यक्तियोको पात्रके रूपमे उपस्थित करना विलकुल असभव है, ऐतिहासिक पात्रोका कार्य अभिनेता ही सम्पन्न कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि गैमलिनके अनुसार कभी-कभी अभिनेताओको रूपकोमे रखा जा सकता है। पर हम लोगोंके यहाँ जो रूपक प्रसारित किये जाते हैं, उनमे 'कभी-कभी' नही, वल्कि हमेशा ही वास्तविक व्यक्तियोका कार्य अभिनेता किया करते है। वहुत-से रूपकोमे तो पात्र रहते ही नही, केवल दो-तीन नैरेटर वारी-वारीसे किसी विपयपर भापण देते है। उदाहरणके लिए, यदि किसी रूपकमे यह दिखलाना हुआ कि पिछले कुछ वर्पोमे हमारे राष्ट्रने किन-किन क्षेत्रोमें क्या-क्या विकास किये है, तो दो-तीन नैरेटरोके द्वारा विकास-सवधी सारी वातें कहला दी जाती है। ऐसे रूपकोमे नाटकीयता, सजीवता एव मनोरजकताका नितात अभाव रहता है। जवतक हमारे यहाँके रेडियो-स्टेशनोमे रूपकोके लिए विशेप प्रवध नही किया जाता, तवतक यही होता रहेगा।

चूँकि 'रूपक' नाम उपर्युक्त दोनो प्रकारकी रचनाओंके लिए व्यवहृत किया जा रहा है, हम उचित समझते है कि दोनोके लिए अलग-अलग नाम दिये जायँ। अच्छा होगा कि सही अर्थ मे फीचर या डाकुमेंट्री कही जानेवाली रचनाओको 'आलेख-रूपक' या 'वस्तु-रूपक' कहा जाय, और अन्यान्य सामान्य रचनाओको मात्र 'रूपक'।

अव हमे रूपकोके क्षेत्र एव उनकी विशेपताओंपर विचार करना चाहिए। रूपककी जो परिभापा ऊपर दी जा चुकी है, उसके अनुसार रूपकोमे सव प्रकारकी वास्तविकताओका नाटकीकृत रूप उपस्थित किया

जा सकता है। जिस प्रकार वास्तविकताओंकी कोई सीमा नहीं है, उसी प्रकार रूपकोंकी भी कोई सीमा नहीं है। उनका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है, उनमें सब प्रकारके विषयोंका समावेश हो सकता है। उनके माध्यमसे हम किसी महापुरुषका जीवन-चरित उपस्थित कर सकते हैं, प्रदेश अथवा देश विशेषके लोगोंकी सभ्यता, संस्कृति एवं लोक-जीवनका परिचय दे सकते हैं, ऐतिहासिक महत्त्वके स्थानोंका इतिहास बतला सकते हैं, आविष्कार विशेषका इतिहास कह सकते हैं, संस्था विशेषका परिचय दे सकते हैं, तात्पर्य यह कि सब विषयोंपर रूपक लिखे जाते हैं। एच० आर० विलियमसनके शब्दोंमें Under the somewhat colourless word "feature" we find included didactic documentaries and historical reconstructions, an encyclopaedia entry brought to life and a glorified parlour game, a vivid piece of yesterday's secret history and a glimpse of to-day's odd occupations We can learn about the law and the applications of science, we can dabble in philosophy and vicariously experience the thrills of physical escape, we can see other lands through amusing individual eyes or switch a general focus on problems at home, we can hear the voices of the great, living and dead, and we can estimate the intellects of the famous and popular'

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी भी नीरस किंतु वास्तविक विषयको रूपकके माध्यमसे उपस्थित किया जा सकता है, पर उपस्थित करनेके ढंगमें मनोरंजकता और सजीवताका रहना अनिवार्य है, जिससे श्रोताओंका मन ऊबे नहीं और वे अंत तक रूपक सुनते रह सकें।

The B B C Quarterly (Autumn 1951)

इसके लिए आवश्यक है कि रूपकमे एकरसता न आने दी जाय। अनेक उपायोंसे ऐसा किया जा सकता है।

सबसे पहले तो लेखकको सोचना पडता है कि वह किस तथ्यको कितने कलात्मक ढगसे उपस्थित कर रहा है। मान लीजिए, 'मिथिला' प्रदेश-पर एक रूपक लिखते समय हमे उसकी सीमा बतलानी है। साधारणत एक नैरेटर-द्वारा कहलाया जा सकता है—'मिथिलाके उत्तरमे नेपाल है, दक्षिणमे गगा नदी, पूर्वमे कोसी नदी है, पश्चिममे गडक।' पर इन बातों-को दूसरे प्रकारसे भी रक्खा जा सकता है। डॉकुमेंट्री फिल्ममे यदि यह सीमा दिखलानी होती, तो दर्शकोंके सामने मिथिला और उसके निकटवर्त्ती प्रदेशोका एक मानचित्र उपस्थित कर दिया जाता, और बारी-बारीसे चारो ओरके सीमावर्त्ती प्रदेशोंसे अलग कर दिया जाता, नैरेटर नेपथ्यमे अलग किये जानेवाले प्रदेशोंके नाम बतलाता जाता, और अतमे दर्शकोंके सामने चित्रपटपर केवल मिथिलाका मानचित्र रह जाता। जैसा कि हम देख चुके हैं, फिल्मोमे दृश्य साधन उपलब्ध हैं, पर रेडियोमे उनका नितात अभाव है। यहाँ सब कुछ ध्वनियोंके माध्यमसे ही प्रस्तुत करना होता है। अत रेडियो-रूपकमे मिथिलाकी सीमा उसके सीमावर्त्ती प्रदेशोमे बोली जाने-वाली भाषाओसे दी जा सकती है। 'मिथिला' रूपकमे यह सीमा इसी प्रकार दिखलायी गयी थी—

स्त्री नैरेटर—यह मिथिलाकी भूमि है, जिसके उत्तरमे पडोसी राष्ट्र नेपाल है,

नेपाली-स्वर—कती राम्रो छ हाम्रो देश नेपाल! हिमालयको उपत्यकामां बसेको, बागमतीको लहर लहराउँदै रहेछन् ह्या! भारत-प्रसिद्ध पशुपतिनाथको मदिर पनी ह्य-इछन्!

(नदीकी धाराकी आवाज)

पुरुष नैरेटर—यह मिथिलाकी भूमि है, जिसके पूर्वमे कोसी नदी प्रवाहित होती रहती है, और उसके बाद,

(एक बंगला-गीतका थोडा-सा अंश, उसकी समाप्तिके साथ ही पृष्ठभूमिमें जल-धाराकी आवाज़)

स्त्री नैरेटर—पश्चिममें गंडककी धारा कल-कल-निनाद किया करती है, जिसके पार

भोजपुरी-स्वर—जी हँऽ, ई कुँअरसिंघके जवार हऽ, जिन्हिका दहडलासे दुश्मनके करेज दरकि जात रहल हा। जानत नइखी ? ई हे नु भोजपुरीके इलाका हऽ।

(जलधाराकी आवाजका तेज होकर फिर मंद हो जाना)

पुरुष नैरेटर—दक्षिणमें पुण्य-सलिला गंगा है, जिसके दूसरे तटपर है मगध,

(एक मगही गीतका थोडा-सा अंश)

स्त्री नैरेटर—नेपाली, बँगला, भोजपुरी और मगही भाषावाले प्रदेशोंके बीचमें यह है मिथिलाकी भूमि, जिसकी सीमा वृहद् विष्णु पुराणके अनुसार इस प्रकार है—

स्वर—गंगाहिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे।
तैरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परमपावनः॥
कौशिकी तु समारभ्य गंडकीमधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंश व्यायामः परिकीर्तितः॥

पुरुष नैरेटर—इसीको मैथिलीमें एक कविने इस प्रकार कहा है—

स्वर—गंगा वहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम वहथि गंडकी उत्तर हिमवत बल-विस्तारा॥
कमला त्रियुगा अमृता धेमुरा वागमती कृतसारा।
मध्य वहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा॥

उदाहरणसे स्पष्ट है कि किसी नीरस तथ्यको किस मनोरंजक ढंगसे प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे एकरसता नहीं आने पाएगी, और सामान्य विवरणकी अपेक्षा इसमें प्रभावोत्पादकता भी अधिक रहेगी।

एक दूसरे प्रकारका उदाहरण 'मंजिलकी ओर' रूपकसे देखिए—

पुरुष-नैरेटर—आज देशके सामने अनेक समस्याएँ हैं—

आदमी१—कहाँ जा रहे हो जी ?

आदमी२—गंगा बाबूके यहाँ !

आदमी१—क्या बात है ?

आदमी२—मोहनको लडका हुआ है !

आदमी१—बडी खुशीकी बात है !

(संक्षिप्त संगीत)

स्त्री—सुना तुमने ?

पुरुष—क्या ?

स्त्री—मालतीको लडकी हुई है !

पुरुष—सचमुच ?

स्त्री—हाँ,हाँ ! झूठ थोडे ही कहती हूँ।

पुरुष-नैरेटर—जन-संख्या बढती जा रही है ! उसके लिए भोजन, वस्त्र और निवासका प्रबंध करना है।

इस प्रकार छोटी-छोटी बातोंको नाटकीय रूपमे रक्खा जा सकता है।

रूपकमे एकरसता न आने देनेके लिए एक-दो और बातोंपर ध्यान देना पडता है। जहाँ एकसे अधिक नैरेटरोंकी आवश्यकता हो, वहाँ स्त्री और पुरुष दोनों नैरेटरोंको बारी-बारीसे रखकर स्वरकी एकरसतासे बचा जा सकता है।

अनेक ऐसे स्थल भी आते है, जहाँ केवल नैरेटरोंके द्वारा ही बहुत-सी बाते कहलानी पडती है। वैसे स्थलोंपर यदि कुछ नैरेटर बारी-बारीसे लबे-लबे उद्धरण बोलना शुरू कर दे, तो रूपकका प्रवाह रुक जाएगा, उसमे एकरसता आ जाएगी, और श्रोता उससे ऊब जाएँगे। उसमे नाटकीयता-का नितात अभाव रहेगा, और उसे रेडियो-रूपक कहा ही नहीं जा सकता। वह तो वास्तवमे किसी बडे निबंधको कुछ नैरेटरों-द्वारा पढवा देना है। फेलिक्स फेल्टनने इस सबधमें अपना अनुभव लिखा है—'The trouble about multiple narration is that it can easily be-

come a cover for inadequate dramatic treatment I was once sent a "dramatised" script, consisting almost entirely of a slab of narrative divided between five different voices If this is all there is to it, radio-dramatic writing is easy You need do no more than number the sentences of an "Encyclopaedia Britannica" article, and send it off to the typist'

अत ऐसे अवसरोपर यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि बिना नीरस बनाये अपनी बात किस तरह कही जाय। 'मिथिला'से ही एक उदाहरण देखिए—

पुरुष-नैरेटर—मिथिलाके पास भाव-प्रवण हृदय ही नही, प्रखर मस्तिष्क भी है।

स्त्री-नैरेटर—इसने तन्मयताके गीत तो रचे ही है।

पुरुष-नैरेटर—दर्शनकी भी साधना की है।

स्त्री-नैरेटर—ईसाके एक हजार वर्ष पूर्व यहाँ वैदिक ज्ञानके केन्द्र थे।

(किसी वैदिक ऋचाका समवेत पाठ)

स्त्री-नैरेटर—मिथिला बडे-बडे दार्शनिकोकी भूमि है।

पुरुष-नैरेटर—न्यायसूत्रोके रचयिता ऋषि गौतम यही हुए थे।

स्त्री-नैरेटर—वैशेषिक-दर्शनके जन्मदाता कणाद की जन्म-भूमि यही है।

पुरुष-नैरेटर—मीमासा-दर्शनके प्रवर्त्तक जैमिनि यहीं रहते थे।

स्त्री-नैरेटर—साख्य-शास्त्रके निर्माता कपिलका निवास मिथिलामें ही था।

पुरुष-नैरेटर—वेदात-दर्शनके सर्वप्रथम प्रणेता व्यासकी भूमि मिथिला ही है।

स्त्री-नैरेटर—ईसाकी छठवी शताब्दी पूर्वसे तीसरी शताब्दी पूर्वतक इसीके वैशाली नगरमे महात्मा बुद्धकी वाणी गूंजी थी।

अनेक स्वर—बुद्ध शरण गच्छामि।
धर्म्म शरण गच्छामि।
सघ शरण गच्छामि।

इस उदाहरणसे समझा जा सकता है कि नैरेटरोके सक्षिप्त उद्धरणोके कारण रूपककी गतिशीलता बनी रहती हे। यदि एक ही या दो उद्धरणोमे सब बाते कह देनेका प्रयत्न किया जाता, तो रूपकमे प्रवाह नही आ पाता। साथ ही, उपर्युक्त उदाहरणमे नैरेटरोके सक्षिप्त भाषणोको भी एक ही प्रकारसे बहुत देरतक नही चलने दिया जाता। बीच-बीचमे वैदिक ऋचा और 'बुद्ध शरण'के आ जानेसे उनमे एकरसता नही आने पाती।

ध्वनि-प्रभावोके द्वारा भी रूपकोको सजीव, गतिशील एव प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता हे। 'अहिंसाकी मूर्त्ति' रूपकके निम्नलिखित उदाहरणसे यह बात समझी जा सकती हे—

लेखा—सन् १९३९ मे ससारका दूसरा महायुद्ध प्रारभ हुआ। तानाशाह हिटलरकी फौज छोटे-छोटे राष्ट्रोको रौंदती हुई आगे बढने लगी।

(मशीनगन, टैंक आदिकी आवाज)

लेखा—नार्वेका पतन हुआ।

(मशीनगन, टैंक आदिकी आवाज)

लेखा—हालैंड और बेलजियम पराजित हुए।

(मशीनगन, टैंक आदिकी आवाज)

लेखा—फ्रासने हिटलरके सामने घुटने टेक दिये।

इस उदाहरणकी घटनाएँ गतिशील है, ध्वनि-प्रभावोने उनकी गतिशीलताको सशक्त बनाया है। लेकिन जिन स्थलोके विवरण स्थिर होते है, उनको नीरस होनेसे बचाना भी रूपककारका काम है। इसके लिए भी

ध्वनि-प्रभावोंकी सहायता ली जाती है। उदाहरणके लिए 'मंजिलकी ओर' रूपकसे एक उद्धरण दिया जाता है—

(पृष्ठभूमिमें मशीनकी हल्की आवाज)

स्त्री—खादके लिए भारतको अबतक दूसरे देशोंपर निर्भर करना पड रहा था, लेकिन खाद बनानेके लिए अब सिदरीमे कारखाना खुल चुका है।

(मशीनकी आवाज तेज होकर, फिर मंद हो जाती है, और पृष्ठभूमिमें चलती रहती है)

पुरुष १—यह सिदरीका कारखाना है। यहाँ अमोनियम सल्फेट तैयार किया जाता है। यह खाद खेतोमे पडकर उन्हे नयी शक्ति देगी।

पुरुष २—भारतके आर्थिक निर्माणमे सिदरीका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे विदेशोको जानेवाले दस करोड रुपयोकी वार्षिक वचत होगी।

स्त्री—दस लाख टन अनाजकी उपज बढेगी।

पुरुष १—इसकी नीवपर रासायनिक उद्योगोंके बडे-बडे कारखाने खुलेगे।

स्त्री—इसकी बनी हुई खाद इतनी सस्ती होगी कि साधारण किसान उसे सरलतासे खरीद सकेंगे।

(मशीनकी आवाज बंद हो जाती है)

ध्वनि-प्रभावोंके साथ-साथ रूपकोंमें समुचित संगीतका भी व्यवहार किया जाता है। इससे अपेक्षित वातावरणकी सृष्टि करनेमें बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि रूपकोंके लिए सजीवता, सरसता, मनोरंजकता, नाटकीयता, गतिशीलता और समुचित वातावरणकी सृष्टि अनिवार्य है। लेकिन किसी रूपकके विभिन्न अंशोमे इन विशेपताओंका

होना उसकी सफलताके लिए पर्याप्त नही है। अपने सपूर्ण रूपमे रूपकको सुसगठित रचना होना चाहिए। उसका सपूर्ण सगठन इस प्रकारका होना चाहिए कि उससे, जैसा कि लुई मैकनीसके एक उद्धरणमे ऊपर कहा गया है, एक नाटकीय प्रभावकी सृष्टि होती हो। सामान्यत रूपकोके विषय बहुत विस्तृत और उलझनवाले होते है, और उनके आधारपर सफल रूपक लिख सकना कुशल रूपककारका ही काम है। लेखकके सामने अनेक समस्याएँ आती है कि वह अपने रूपकके लिए किसी विषयके अतर्गत आनेवाली घटनाओमेसे किन्हे ले, किन्हे छोड दे, किन बातोको किन स्थानोपर कहे। इन समस्याओपर विचार करते समय लेखकके ध्यानमे हमेशा यह रहना चाहिए कि सफल रेडियो-रूपक वही है, जो अपने सपूर्ण रूपमे श्रोताओको प्रभावित कर दे, उनके मानस-पटपर एक स्थिर एव स्पष्ट रेखा खीच दे। इसके लिए कोई एक निश्चित उपाय नही बतलाया जा सकता। रूपकोके विषयोके साथ-साथ उनकी अभिव्यक्तिका ढग भी बदलता रहेगा। लेकिन सब रूपकोकी गति सीधी एव स्वाभाविक होनी चाहिए। उनका विकास ऐसा कदापि न होना चाहिए कि श्रोताओको अनुभव हो, जैसे एक स्थलसे दूसरे स्थलपर आनेके लिए छलाँग मारी जा रही है। इसके विपरीत रूपकमे प्रतिपाद्य विषय-वस्तु एव घटनाओका विकास क्रमिक एव स्वाभाविक होना चाहिए। तभी उससे एक निश्चित प्रभाव की सृष्टि हो सकेगी, अन्यथा वह रूपक, जिसमें कोई नैरेटर यत्र-तत्र बिखरी हुई घटनाओको जोड भर देता है, रूपक न होकर, रूपकका विडबना मात्र होगा।

कुछ रूपक वास्तविक घटनाओ और कल्पनाके मिश्रणमे भी लिखे जा सकते है। कोई ऐसा कथानक तैयार कर लिया जा सकता है, जो प्रतिपाद्य विषय-वस्तु एव घटनाओके साथ-साथ उनके समानातर चलता रहे, अथवा उससे पूर्णत सबद्ध हो। उदाहरणके लिए, यदि सरकारकी 'अल्प-बचत-योजना'पर कोई रूपक लिखना हो, तो किसी ऐसे पति-पत्नीकी कल्पना की जा सकती है, जो अपने एक निकट सबधीकी मृत्युमे शोकाकुल और चिंतित

है। उनके निकट सबधीने अपने जीवनमे काफी रुपये कमाये, पर भविष्यके लिए कुछ नही बचाया। अब उसकी मृत्युके बाद उसकी विधवा पत्नी और तीन बच्चे निराधार है। हमारे कल्पित पति-पत्नी इन्ही बातोको सोच-कर चिंतित होते है, तबतक एक जानकार व्यक्ति आता है और उनकी चिंताका कारण समझकर उन्हे अल्प-बचत-योजनाकी उपयोगिता, नियम आदिसे परिचित कराता है। यहाँ नैरेटरका काम यह परिचित व्यक्ति ही करेगा। इस प्रकार वास्तविकता एव कल्पनाको मिलाकर भी रूपक लिखे जा सकते है।

अब हम रूपकोकी भाषा-शैलीपर आते है। जैसा प्रारभमे कहा गया है, रूपकोमे वास्तविक व्यक्तियोको ही पात्र बनाया जाता है। अत उन व्यक्तियोके व्यवसाय, सस्कार, शिक्षा-दीक्षा आदिके अनुरूप ही उनकी भाषा होनी चाहिए। स्वाभाविकता तो तब आती है, जब उनकी भाषा, उनके बोलनेके ढग, उनके लहज़ेके रिकार्ड तैयार करके, उन्हीके आधारपर रूपक लिखे जाते है। पर चूँकि हमारे यहाँ अभी साधनोका अभाव है, इस सबधमे यही कहा जा सकता है कि रूपकके कथनोपकथन की भाषा यथासभव स्वाभाविक और पात्रोके अनुरूप होनी चाहिए। नैरेटरो-को भाषा भी साहित्यिक और अलकृत होनेके बदले सरल, स्पष्ट एव वाता-वरण तथा विषय-वस्तुके अनुरूप हो, तभी रूपक सफल हो सकता है।

आलेख-रूपक अथवा डॉकुमेंट्रीके सबधमे यह याद रखना चाहिए कि वह लेखक, प्रोड्यूसर, इजीनियर आदिके सहयोगका फल है। पहले उसकी एक सुनिश्चित रूप-रेखा बनायी जाती है, उसके आधारपर इटरव्यू, वक्तव्य, गीत आदिके रिकार्ड तैयार किये जाते है। इस प्रकार सामग्री-सग्रहके बाद उसके सपादन एव सयोजनका कार्य होता है। पर्याप्त काट-छाँट, जोड-घटावके बाद आलेख-रूपकको अतिम रूप मिलता है।

रूपक लिखना सचमुच अपनेमे ही एक स्वतत्र कला है, जो नाटक आदिके स्वरूप-विधानोसे पूर्णत पृथक् है। श्री विलियमसनका तो कहना है कि रेडियोके पास यदि कोई अपनी कला है, जिसके स्वरूप-विधानका

निर्माण केवल रेडियोने किया है, तो वह रूपक है। (विलियमसनका मतलव आलेख-रूपकसे है)। रेडियोसे प्रसारित की जानेवाली अन्य रचनाएँ तो वहुत अंश तक पहलेसे उपलब्ध रचनाओंके रूपातरित स्वरूपमात्र हैं। उनके अनुसार केवल रेडियोके लिए लिखनेका अर्थ है रूपक लिखना, रूपक प्रस्तुत करना प्रस्तुतकर्त्ताकी सबसे बडी कुशलता है, और रूपक सुनने-का अर्थ है रेडियो-सेट रखनेकी सार्थकता सिद्ध करना।[१] श्री विलियमसन-का कथन बी० बी० सी० के गत पच्चीस वर्षोंके प्रयोगोंके फलस्वरूप प्राप्त रूपकोंकी कलापर आधारित है, पर अपने यहाँकी स्थिति देखते हुए अभी हम वैसा नही कह सकते। पर उनका कथन सत्य है, और अपने यहाँ रूपकोंकी कलाका विकास होनेपर हम उनकी सार्थकता समझ सकेंगे।

---

१. The feature is the radio-art and all other forms are slightly ersatz To write for radio (in distinction from writing something that can be broadcast) means to write a feature. To produce a feature implies the ability to be able to produce anything else as part of one's apprenticeship for the final test of craftsmanship To listen to a feature properly written and produced is to experience again, over a quarter-of-century after, something of that pristine conviction that it was worth while having a wireless

—Reflections on Radio Features

(The B B. C Quarterly, Autumn 1951)

रेडियो-रूपान्तर

रेडियोके लिए मौलिक नाटक और रूपक तो लिखे ही जाते हैं, सुप्रसिद्ध लेखकोंके रंगमंच-नाटकों, कहानियों और उपन्यासोंके रूपोंमें भी इस प्रकार के परिवर्तन किये जाते हैं कि वे रेडियोके श्रव्य माध्यमसे सरलतापूर्वक प्रसारित किये जा सकें। रेडियो-द्वारा इन्हें प्रभावोत्पादक ढंगसे प्रस्तुत करनेके लिए इनके रूपोंमें परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। मौलिक रंगमंच-नाटकों, कहानियों और उपन्यासों तथा उनके रेडियो-रूपान्तरोंमें माध्यमका अंतर पड़ जाता है। रंगमंचके नाटक दर्शकोंके लिए लिखे जाते हैं, कहानियों और उपन्यासोंकी रचना पाठकोंके लिए होती है। इन सब रचनाओंका प्रभाव आँखोंके द्वारा ग्रहण किया जाता है, पर रेडियो-नाटकों का प्रभाव हम केवल कानोंके द्वारा ही ग्रहण करते हैं। यही बात नाटक-विभाग (बी० बी० सी०)के डायरेक्टर भाल गिलगुड इस प्रकार कहते हैं—'Broadcasting is simply another medium of telling a story. The novelist uses the medium of words, the theatre uses the medium of living actors, the cinema uses the medium of the camera and broadcasting uses that of the microphone' माध्यम बदल जानेके कारण उपर्युक्त रचनाओंके रूपोंमें भी परिवर्तन करने पड़ते हैं। रचनाओंका रेडियो-रूपान्तर लिखते समय किन बातोंपर विशेष ध्यान देना पड़ता है, रूपान्तरकारके सामने कैसी-कैसी समस्याएँ आती हैं, और उनका समाधान किस प्रकार किया जाता है, इन बातोंपर हम विचार करेंगे। सब प्रकारकी रचनाओंके रूपान्तरकी समस्याएँ एक ही प्रकारकी नहीं होतीं, इसलिए मैं उपर्युक्त रचनाओंको अलग-अलग लेकर उनके रूपांतरपर प्रकाश डालूँगा।

रंगमंच-नाटकोंके रेडियो-रूपान्तर

रूपान्तरकारका काम किसी रंगमंच-नाटकको रेडियो-माध्यमके अनुरूप बना देना है, कथानकमें परिवर्तन करनेकी उसे पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है। फेलिक्स फेल्टन अपनी पुस्तक 'The Radio Play' में इस विषयपर लिखते हैं—'The adaptor's work is likely to be unobtrusive rather than spectacular, since his intention will have been to keep the play as nearly as possible in its original form, where, therefore, he has made alterations in the original text, we may be sure that he has had good many reasons for doing so' तात्पर्य यह कि रूपान्तरको यथासंभव मौलिक नाटकके निकट रहना चाहिए, और रूपान्तरकार नाटकके मौलिक रूपमें यदि कोई परिवर्तन करता है, तो इसके लिए उसके पास कोई कारण होना चाहिए।

एक उदाहरणके द्वारा यह बात स्पष्ट की जा सकती है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित रंगमंच-नाटक 'अम्बपाली'के प्रथम अंकका प्रथम दृश्य देखिए। एक आम्रकुंजमें किशोरी अम्बपाली झूलेपर झूल रही है और गा रही है—'मेरी श्यामाने बंशी फूंकी, कोइलिया क्यों कूकी?' गीत समाप्त होते ही उसकी सखी मधूलिका आती है, और दोनों हास-परिहासमें मग्न हो जाती हैं। इसके बाद दोनोंका वार्त्तालाप इस प्रकार है—

मधूलिका—अम्बे, आज भोर-भोर तूने कुछ देखा है क्या? या रातमें कोई सपना देखा था?

अम्बपाली—तेरा मतलब?

मधूलिका—मतलब है, तेरे इस गानेसे।

अम्बपाली—क्या बिना सपने देखे आदमी कुछ गा नहीं सकता? और, सच पूछ, तो क्या ऐसी कोई भी रात होती है जिसमें आदमी सपने न देखे या ऐसा कोई भोर आता है जिसमें आदमी कोई रूप न देख पाये?

मधूलिका—लेकिन, सपने-सपनेमे फर्क होता है और फर्क होता है रूप-रूपमे, अम्बे ! एक सपना होता है जिसमे आदमी डरकर आँखे खोल देता है और एक सपना ऐसा होता है, जिसमे जग जानेके बाद भी आदमी आँख मूंद लेता है कि एक बार फिर उसकी कडियाँ जोड सके ! समझी ?

अम्बपाली—हूँ।

मधूलिका—यो ही एक रूप होता है जिसको देखकर आँखे मुड जाती या मुंद जाती है और दूसरा रूप होता है, जिसपर नज़र पडते ही पलके और बरौनियाँ काम करना छोड देती है, नजरोमे टकटकी बँध जाती है और दिमाग चिल्लाता है, आह, ये आँखे इतनी छोटी क्यो हुई ? बडी होती, इन्हीमे उसे रख लेता ! समझी ?

अम्बपाली—हूँ ।

मधूलिका—हूँ ! हूँ क्या ?

अम्बपाली—यही कि रूप-रूपमे फर्क होता है और फर्क होता है सपने-सपनेमे। यही न ? लेकिन, एक बात कहूँ मधु, मुझे याद नही कि कभी बुरे सपने भी देखे होऊँ, और मेरी आँखोने जिसे देखा, सुन्दर ही पाया !

मधूलिका—(आश्चर्यमयी मुद्रासे) अच्छा ?

अम्बपाली—हाँ, हाँ, सच कहती हूँ, सखि ! न जाने क्या बात है ? या तो कुरूप चीजे मेरी आँखोंके सामने आती ही नही, या मेरी नजरे उनका प्रतिबिम्ब ग्रहण नही करती

मधूलिका—(बात काटकर किञ्चित् मुस्कानसे) या तेरी नज़र पडते ही कुरूप भी रूपवान हो उठते है ?

अम्बपाली—दिल्लगीकी बात नही है, मधु ! मैने आजतक दुनियामे सिर्फ सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य देखा है—निर्जीव प्रकृतिसे लेकर प्राणवान प्राणी तक ! और, सपने ? उनकी बात मत

पूछ। मधु, आदमी जागना क्यों चाहता है? सोये रहो, सपने देखते रहो, क्या इससे भी कोई दूसरी अधिक सुन्दर चीज हो सकती है? जागरण! (उपेक्षाके शब्दोंमें)-जागरण आदमीका वरदान है या अभिशाप, रे!

मधूलिका—आज तुझे यह क्या हो गया है? तू किस सपनेके लोकमे है?

अम्बपाली—सपनेका लोक! आह, मैं हमेशा उसीमे रह पाती, मेरी मधु! जब बच्ची थी, सपनेमे देखती—परियोका देश, मणियोका द्वीप, उडनखटोलेकी सैर! और आज-कल? ज्योही आँखे लगी कि मैं पहुँच गयी उस सुनहली घाटीमे जहाँ इन्द्रधनुषका मेला लगा रहता है, जहाँ जवानी तितलियोके रूपमें उडती रहती है, या उस देव-लोकमे जहाँ सुनहले पखवाले देवकुमार नीलमके पखो-वाली अप्सराओके अगल-बगल, आगे-पीछे मँडराते फिरते है, या कम-से-कम उस रूपदेशकी राजसभामे, जहाँ कलँगीवाले राजकुमारोकी भरमार है—जहाँ नृत्य है, सगीत है, और है (अचानक सिहर उठती है) मधु, मधु, तू क्या ऐसे सपने नही देखती?

मधूलिका—मैं देखती या नही देखती, बात मत बहला। बता तूने रात भी क्या कुछ ऐसा ही सपना देखा है?

अम्बपाली—रात जो देखा, उसकी मत पूछ! उफ, बिलकुल अद्-भुत, अपूर्व! उसकी यादमे ही शर्म आती है, सखि!

मधूलिका—शर्म! सपनेमे शर्मकी कौन-सी बात री!

अम्बपाली—नही मधु, जिद न कर! सचमुच उसकी यादसे ही मैं शर्मसे गड जाती हूँ!

मधूलिका—(व्यग्यके शब्दोमें) समझी, समझी, तभी तो भोर-भोर यह गीत! आखिर अचानक आकर उसने तुझे गुदगुदा

ही दिया—'किसने अचानक गुदगुदाया (गानेका व्यंग्य करती है)

अम्बपाली—लेकिन, तेरा यह निशाना ठीक नही बैठा, मधु ! यह वह बात नही, जिसकी तू कल्पना भी कर सके !

मधूलिका—मेरी कल्पनाकी रानी ! मै, और वहाँ तक पहुँच सकूँ ? खर, बता, तूने क्या देखा ?

अम्बपाली—तेरी जिद, अच्छा सुन (**वह चकित नेत्रोंसे इधर-उधर देखती है कि कोई दूसरा तो नहीं है और फिर धीमे स्वरमें कहने लगती है**) रात देखा, कही अजीब देशमे पहुँच गयी हूँ, जहाँ चारो ओर फूल-ही-फूल है। जिन्हे हम गूलर-पाकड-पीपल कहते है, उनमे भी फूल लगे है—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके। जमीनपर घास-फूसकी जगह फूलोकी पखडियाँ बिछी है और धूलकी जगह पीत-पराग बिखरा है। हवामे अनहद सगीत—वातावरणमे अजीब रगामेजी। सामने एक तालाब देखा, जिसमे कमलके सहस्र-सहस्र फूल खिल रहे—लाल, श्वेत, पीत, नील ! और, दर्पणोपम निर्मल नील जल ! मुझे गरमी महसूस हो रही थी। क्यो न तालाबमे नहा लूँ ? इधर-उधर देखा, कोई नही। मैने झटपट कचुकी उतार दी, बाह्य परिधान खोलकर रख दिया। दौड-कर किनारे पहुँची। जलमे कूदनेके लिए झाँका, तो अपना सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब देखा ! (**सिहरती हुई**) अपना ही प्रतिबिम्ब ! लेकिन उसे देखते ही, मधु, नसोमे खूनके एक अजीब ज्वारका अनुभव हुआ और आधी बेहोशीमे ही अपनेको पानीमे फेक दिया।

मधूलिका—(**विस्मयमें**) अजीब सपना !

अम्बपाली—उनका अनोखापन तो अब आता है, रे। पानीमें धँस-

कर में तैरने लगी और बढ़ी एक नील कमलकी ओर। किन्तु यह क्या ? यह तो कलँगीवाला राजकुमार है और मुझे अपनी ओर आते देख वह मुस्करा रहा है। मैं चकित हुई ! दूसरे कमलोंकी ओर देखा, वैसे ही कलँगी-वाले राजकुमार, हजार-हजार ! और, सब-के-सब मेरी ओर देखकर सिर्फ मुस्करा नहीं रहे, बल्कि ठठा-ठठाकर हँस रहे ! मैं नगी—उफ, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे बाहर होऊँ ? इससे तो डूब मरना अच्छा। डूब मरूँ—मरूँ—इसी उम्रमें ! तो ? तो ? डुबकी मारकर शर्म छिपानी चाही—एक डुबकी, दूसरी डुबकी, तीसरी डुबकीमें मालूम हुआ, साँस घुट रही है। अच्छा हुआ, नींद टूट गई। जगी तो पाया, पसीने-पसीने थी।

मधूलिका—निस्सन्देह, विचित्र सपना देखा है तूने। लेकिन, समझती है, इसका मानी क्या है ?

अम्बपाली—क्या समझूँ ? एक दिनका सपना हो तो, कुछ समझा जाय ? जिसकी जिन्दगी ही सपनेकी है, वह किस-किसका मानी लगाये ?

मधूलिका—लेकिन इस सपनेका तो खास महत्त्व है। वसतके प्रथम दिनका यह सपना साधारण सपनोंमें नहीं है !

अम्बपाली—तो क्या मानी है इसका ?

मधूलिका—वही, जो उस दिन ज्योतिषीजीने तेरे हाथकी रेखाएँ देखकर कहा था—"तेरे चरणोंपर हजार-हजार राज-कुमारोंके मुकुट लोटेंगे।"

अम्बपाली—चुप, चुप ! मैं तो उसकी कल्पनासे ही सिहर उठती हूँ मधु ! "हज़ार-हजार राजकुमार !" उफ, वह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला

मधूलिका—'मेरा तो अकेला अरुणध्वज !' क्यों ? यही न कहना चाहती थी ? (रहस्यपूर्ण ढंगसे मुस्कराती है)

इसके बाद इसी दृश्यमे अरुणध्वज आता है, तीनोंमे बाते होती है। अरुणध्वज वैशालीके फाल्गुनी उत्सवमे चलनेका प्रस्ताव रखता है, और तीनोका वैशाली जाना एक प्रकारसे निश्चित हो जाता है।

'अम्बपाली'का रूपान्तर करते समय इस प्रथम दृश्यको बिलकुल भिन्न प्रकारसे उपस्थित किया गया है, और इस प्रकारके परिवर्त्तनके लिए अनेक कारण है। पहले रूपान्तरित अश देखिए—वाद्य-सगीतके बाद दृश्य इस प्रकार प्रारभ होता है—

मधूलिका—क्यो अम्बे, सो गयी ? (हल्की हँसी) अभी कह रही थी, कहानी सुनाओ मधु, अभी सो गयी। अच्छा, शातिसे सो, स्वप्नोके रगीन ससारमे विचरण कर। मै भी सो रही हूँ। (जम्हाई लेनेकी आवाज)

(पृष्ठभूमिमें हल्का स्वप्न-सूचक संगीत)

कल्पना—(दूरसे) अम्बे !—अम्बे !

अम्बपाली—कौन ? तुमने मुझको पुकारा ?

कल्पना—हाँ अम्बपाली !

अम्बपाली—कौन हो तुम ?

कल्पना—मुझे नही पहचानती ? तुम्हे कबसे नये-नये देश दिखाती रही हूँ ! परियोका देश दिखाया है मैने तुम्हे, मणियोंके द्वीपपर तुम्हे ले गयी हूँ मै। मुझे नही पहचानती ?

अम्बपाली—हाँ-हाँ, कुछ-कुछ पहचान तो रही हूँ।

कल्पना—दुत् पगली ! पहचानने, न पहचाननेसे क्या ! चल मेरे साथ, आज फूलोका देश दिखाऊँगी।

अम्बपाली—फूलोका देश ?

कल्पना—हाँ अम्बे, ऐसा देश तूने देखा न होगा। चल, उड चल मेरे साथ !

अम्बपाली—अच्छा !

(ऊपर उठता हुआ संगीत)

अम्बपाली—वह क्या देख रही हूँ मैं ? प्रकाश ! स्वर्णिम प्रकाश !

कल्पना—वह सुनहली घाटियोंका देश है, वहाँ इन्द्रधनुषोंका मेला लगा रहता है। वहाँ देवकुमार रहते हैं, सुनहले पंख-वाले देवकुमार। वे नीलमके पंखोंवाली अप्सराओंके आगे-पीछे, इधर-उधर मँडराते फिरते हैं। वहाँ नृत्य है, संगीत है

अम्बपाली—चलो न वहीं, देवकुमारोंको देखूँगी।

कल्पना—नहीं अम्बे, मैं तुझे फूलोंका देश दिखाऊँगी।

अम्बपाली—वायुकी लहरोंपर तिरती हुई यह कैसी सुरभि आ रही है ?

कल्पना—यह फूलोंके देशकी सुरभि है अम्बे ! देख, तू वहाँ पहुँच भी गयी !

अम्बपाली—कितना सुन्दर देश है यह ! फूलोंका देश ! राशि-राशिके फूल ! चारों ओर फूल-ही-फूल—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके ! धरतीपर फूलोंकी पंखुडियाँ, धूलके बदले पीतपराग ! चारों ओर यौवनकी रंगीन तितलियाँ उड रही हैं।

कल्पना—यही फूलोंका देश है अम्बे !

अम्बपाली—और यह ?

कल्पना—निर्मल नील सरोवर।

अम्बपाली—कैसा मनमोहक है यह ! कमलके फूल—सहस्र ! सहस्र ही नहीं, असंख्य। लाल, श्वेत, पीत, नील ! ये फूल मुझे स्नान करनेका इंगित कर रहे हैं। सुनती हो ?

अरे, तुम कहाँ गयी? अभी तो यहीं थीं, कहाँ अदृश्य हो गयी ? (हल्की हँसी) अच्छा ही हुआ, तुम चली गयीं। मैं कञ्चुकी खोलकर, परिधान उतारकर

स्नान करूँगी इसमे! तुम्हारे रहनेसे मुझे लज्जा लगती। निर्मल जलमे मेरा प्रतिबिम्ब! कितना सुन्दर है यह! अच्छा, जलमे कूद पडूं। (**जलमें कूदनेकी आवाज**) वह नील कमल! चलूं, ले आऊँ उसे! (**तैरनेकी आवाज**) अरे! यह क्या? यह फूल नही, कलँगी-वाला राजकुमार है। मुझे देखकर मुस्कुरा रहा है। भागूं, उधर चलूं इधर भी कलँगीवाला राजकुमार! इधर भी कलँगीवाला राजकुमार! इतने राजकुमार!

बहुत-से पुरुष-स्वर (बारी-बारीसे)—इधर आओ अम्बे! इधर आओ अम्बे! (**कई बार**)

अम्बपाली—मुझे मत देखो, मुझे मत देखो, मैं नग्न हूँ, नग्न हूँ मैं!

बहुत-से पुरुष-स्वर—(**हँसी**)

अम्बपाली—तुम नही मानते, नही मानते, तो मैं डूब मरूँगी! आह! साँस घुट रही! आह! (**जोरसे**) आह!

(**पृष्ठभूमि-सगीत समाप्त**)

मधूलिका—क्या है अम्बे?

अम्बपाली—कौन? कौन? मधु? कुछ नही मधु, कुछ नही! मैं स्वप्न देख रही थी!

मधूलिका—तू तो सदैव स्वप्न ही देखा करती है अम्बे! कोई भयानक स्वप्न था क्या?

अम्बपाली—नही, मधु, भयानक स्वप्न नही था।

मधूलिका—तो, तू इस तरह चिल्ला क्यो उठी?

अम्बपाली—यो ही।

मधूलिका—यो ही नही, तुझे कहना पडेगा।

अम्बपाली—मैं लज्जाके नील सरोवरमे डूबी जा रही थी।

मधूलिका—लज्जाके नील सरोवरमे?

अम्बपाली—हाँ मधु, मैं नग्न थी, पूर्णत नग्न! और, हज़ार-हज़ार राजकुमार, कलँगीवाले राजकुमार मुझे नग्न देख रहे थे!

मधूलिका—अब समझी!

अम्बपाली—क्या समझी मधु?

मधूलिका—वसतकी प्रथम रात्रिका यह स्वप्न कुछ महत्त्व रखता है अम्ब!

अम्बपाली—क्या महत्त्व रखता है मधु?

मधूलिका—यह साधारण स्वप्न नही है! इसका तात्पर्य

अम्बपाली—क्या तात्पर्य है इसका?

मधूलिका—याद है तुझे? उस दिन ज्योतिषीने तेरे हाथकी रेखाएँ देखकर क्या कहा था? तेरे चरणोपर हज़ार-हज़ार राजकुमारोंके मुकुट लोटेंगे!

अम्बपाली—चुप, चुप! मैं तो उसकी कल्पनासे ही सिहर उठती हूँ मधु! हजार-हज़ार राजकुमार! उफ! क्या वह भी कोई जीवन होगा? मेरा तो अकेला

मधूलिका—अरुणध्वज है! क्यो, यही न कहना चाहती हो?

अम्बपाली—हाँ मधु, यही कहना चाहती हूँ!

मधूलिका—तो, आशकित होनेकी क्या बात है? स्वप्न भी कभी सत्य होते है?

अम्बपाली—नही मधु, तू कह रही थी, यह स्वप्न असाधारण है!

मधूलिका—अच्छा, इसका विचार कल करना। आओ, अब सो जाएँ! अभी रात बहुत शेष है!

(वाद्य-सगीतसे दृश्य समाप्त होता है)

अब ऊपरके दोनो अंशोको देखनेसे ज्ञात होगा कि नाटकका रूपान्तर करते समय उसके मौलिक रूपमें पर्याप्त परिवर्तन किया गया है, पर इन परिवर्तनोंके लिए रूपान्तरकारके पास अनेक कारण है। सबसे पहला परिवर्तन तो यह है कि दृश्यके प्रारभमे अम्बपाली जो गीत गा रही है, उसे हटा दिया

गया है, अम्बपाली और मधूलिकाकी चुहलबाजी तथा स्वप्न एव रूपके सबधमे उनकी बातचीतको रूपान्तरित अशमे कोई स्थान नही दिया गया है। ऐसा करनेके लिए पहला कारण यह है कि रेडियो-नाटकमे समयका बधन है। रगमचपर 'अम्बपाली'का अभिनय दो-ढाई घटे तक दिखाया जा सकता है, पर रेडियो-द्वारा उसे एक घटेमे ही प्रसारित करना है। 'अम्बपाली'के रेडियो-रूपान्तरको इस प्रकार रखना है कि एक ही घटेमे उसका पूरा आनद उठाया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि कथनोपकथन और घटना-चक्रके उस अशको रूपान्तरमे आने न दिया जाय, जिसका नाटकके मूल सूत्रसे निकट सबध न हो। रगमच-नाटकके प्रारभिक दृश्यमे नाटककी मूल घटना, मूल कथावस्तु अथवा मूल समस्याको धीरे-धीरे प्रस्फुटित होने का अवसर दिया जाता है, लेकिन रेडियो-नाटकमे इसके लिए अवकाश नही है। यहाँ हमे नाटककी प्रधान विषय-वस्तुपर शीघ्रतासे पहुँच आना है। रेडियो-नाटकमे ऐसे अशोके लिए कोई स्थान नही है, जो नाटककी मूल कथावस्तु या समस्यापर शीघ्रतासे पहुँचनेमे बाधक हो। इसीलिए 'अम्ब-पाली'के रूपान्तरमे पहले गीतको भी स्थान नही दिया गया है। रगमचपर गीत गानेमे कुछ समय भी लगता है, और रेडियो-नाटकमे समयका अभाव है।

'अम्बपाली'के उपर्युक्त अशमे दूसरा परिवर्तन यह है कि समूचा दृश्य बिलकुल भिन्न प्रकारसे उपस्थित किया गया है। मूल नाटकमे पहला दृश्य आम्र-कुजका है, जिसमे अम्बपाली झूलेपर झूलती है, वही मधूलिका आती है और दोनोमे बाते होती है, वही अम्बपाली मधूलिकाको अपना विचित्र सपना भी सुनाती है। रूपान्तरित अशमे दृश्य शयन-कक्षसे प्रारभ होता है, जिसमे अम्बपाली और मधूलिका सोयी हुई है, यही अम्बपाली स्वप्न देखती है। रगमचकी दृष्टिसे पहला दृश्य बडा सुन्दर था। पर्दा उठते ही लोग आम्र-कुजका रमणीय दृश्य देखते, जिसमे अम्बपाली झूलेपर झूलती हुई गाती रहती, बादमे अपनी सखी मधूलिकासे अपने स्वप्नका विवरण देती। 'अम्बपाली'के प्रथम दृश्यमें स्वप्नका वर्णन ही सबसे प्रधान वस्तु है, क्योकि इससे उसकी मानसिक अवस्थाका परिचय मिलता है। हम उसका मनो-

वैज्ञानिक विश्लेषण करें, तो ज्ञात होगा कि किसी ज्योतिषीने उसके हाथकी रेखाएँ देखकर भविष्यवाणी की है कि उसके चरणोंपर हज़ार-हज़ार राजकुमारोंके मुकुट लोटेंगे। इस बातको वह अपने चेतन मनमें स्थान नहीं देती, क्योंकि वह अरुणसे प्रेम करती है। हज़ार-हज़ार राजकुमारोंकी कल्पनासे ही वह सिहर उठती है, फलत यह भावना उसके अवचेतन मनमें समा जाती है और वहींसे स्वप्न बनकर उसकी पलकोंमें आती है। इन दोनों परस्पर विरोधी भावनाओंके कारण अम्बपालीके मनमें एक द्वन्द्व है, जो 'अम्बपाली' नाटकका प्रधान विषय है। तो, स्वप्न-दृश्य 'अम्बपाली'का प्रारंभिक केन्द्र-बिंदु है, जहाँसे कथा-वस्तु आगे चलती है, लेकिन मूल नाटकमें यह स्वप्न-दृश्य वर्णनके रूपमें आया है, क्योंकि उसके पास रंगमंचका बंधन है। रंगमंचपर स्वप्न-दृश्य दिखलानेमें कठिनाई है, पर रेडियो-द्वारा इसे सरलतासे प्रस्तुत किया जा सकता है। स्वप्न-दृश्यको वर्णन-द्वारा उपस्थित न करके, स्वतंत्र रूपसे ही क्यों उपस्थित किया जाय, इसके लिए भी कारण है। प्रत्यक्ष दृश्यमें जो प्रभावोत्पादकता और मर्मस्पर्शिता होती है, वह वर्णनमें नहीं होती। इसीलिए रूपान्तरमें स्वप्नको प्रत्यक्ष दृश्यके रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

यों, देखनेमें ज्ञात होगा कि रूपान्तर मूल नाटकसे भिन्न है, लेकिन उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषणको देखनेसे संदेह नहीं रह जाएगा कि विषय-वस्तुकी दृष्टिसे रूपान्तर और मूल नाटकमें कोई अंतर नहीं है। दोनोंमें अंतर केवल अभिव्यक्ति और माध्यमका है। प्रभावोत्पादकताकी दृष्टिसे रंगमंचकी ही विषय-वस्तुको रेडियो-माध्यमके लिए परिवर्तित कर दिया गया है।

पर सब नाटकोंमें एक ही प्रकारके परिवर्तन नहीं किये जा सकते। प्रत्येक नाटकके रूपान्तरकी अपनी समस्याएँ होती हैं, और रूपान्तरकारको सोचना पड़ता है कि नाटकके किन अंशोंमें, किस प्रकारके परिवर्तन किये जायँ कि वह सरलतासे रेडियो-द्वारा प्रसारित किया जा सके, और लोग उसे केवल सुनकर ही समझ सकें। इसीलिए रूपान्तरका कोई एक निश्चित उपाय

नहीं बतलाया जा सकता। यह रूपान्तरकारकी अपनी सूझ, प्रतिभा और अनुभवपर निर्भर है कि वह कहाँ और किस प्रकारके परिवर्तन करता है, पर सब प्रकारके परिवर्तनोंकी सार्थकता होनी चाहिए। उदाहरणके लिए 'अम्बपाली'का ही एक दूसरा दृश्य देखिए। इसके तीसरे अंकके प्रथम चार दृश्योंमे अजातशत्रुकी कथा है। उनमे दिखलाया गया है कि अजातशत्रुके हृदयमे अम्बपालीके प्रति आसक्तिकी भावना है, वह वैशालीपर आक्रमण करनेके लिए अपने मन्त्रियोसे परामर्श करता है, कूटनीतिके खेल खेलता है, वैशाली के नागरिकोमे भेदभावके बीज बोता है, और अंतमे उसपर आक्रमण करके विजयी होता है। यह समूची कथा 'अम्बपाली'की आधिकारिक कथासे अलग है, इसमे अम्बपालीकी चारित्रिक विशेषताओपर भी कोई प्रकाश नही पडता। (उसकी वीरता अवश्य सामने आती है, जिसका संकेत रूपान्तरित अंशमे आगे कर दिया गया है)। साथ ही, रूपान्तरित नाटककी अवधि भी मूल नाटकसे कम होनी चाहिए। इसलिए छब्बीस पृष्ठोकी इस कथाको इस प्रकार संक्षिप्त कर दिया गया है।

(वाद्य-संगीतसे दृश्य-परिवर्तन)

चयनिका—देवि अम्बपाली।

अम्बपाली—क्या है चयनिके?

चयनिका—सुना है, वैशालीपर आक्रमण होनेवाला है। मगधराज अजातशत्रुकी सेनाएँ बढती आ रही है।

अम्बपाली—हाँ चयनिके, जानती हूँ मैं। वैशाली और मगधकी शत्रुता नयी नही है। मगध वैशालीकी उन्नति नही देख सकता, वृज्जिसंघका गौरव उसके अंतरको जला रहा है। जानती है, अजातशत्रुने क्या कहा है?

चयनिका—क्या कहा है भद्रे?

अम्बपाली—अजातशत्रुने कहा है, वैशाली (फेड आउट)*

* 'फेड आउट'का तात्पर्य होता है—ध्वनिका धीरे-धीरे लुप्त होजाना। इसके लिए अभिनेता बोलता हुआ धीरे-धीरे माइक्रोफोनसे दूर हट जाता है।

अजातशत्रु—(फेड इन)* को पददलित कर दूंगा। उसके गौरवको धूलमे मिला दूंगा। वृज्जियोंको अपने सघ-बलका अभिमान हो गया है। गगापर चलनेवाले हमारे बजरोसे वे कर वसूलते है, गगा पारकर वे हमारे गॉव पर छापा मारते है, उन्हे लूटते है। मगध अपना यह अपमान नही सहन कर सकता। वह वैशालीको पददलित करके रहेगा।

(युद्ध-संगीत, युद्ध-कोलाहल)

अजातशत्रु—मगधके वीरो, बढते चलो, विजय तुम्हारी है।

(युद्ध-सगीत, युद्ध-कोलाहल, फिर सगीत)

अजातशत्रु—(अट्टहास) वृज्जियोको अपनी सघ-शक्तिका अभिमान था! (हँसी) भगवान् बुद्धने कहा था, वृज्जियोकी उन्नति होगी, उन्हे कोई पराजित नही कर सकेगा! (हँसी) अजातशत्रुको तलवारसे अपनी तलवार टकराने चले थे वे! (हँसी)

(वाद्य-सगीत-द्वारा दृश्य-परिवर्तन)

अम्बपाली—क्यो चयनिके, देख तो, मेरा शृगार कैसा उतरा!—नही बोलती तू? क्या सोच रही है?

चयनिका—कुछ नही आर्ये! आपका यह शृगार देखकर आपके वीर-वेशकी स्मृति सजग हो आती है!

अम्बपाली—वीर-वेश! हॉ चयनिके, वैशालीके लिए अम्बपाली सबकुछ कर सकती है। लेकिन, उस वीर-वेशसे कोई लाभ तो न हुआ, वैशाली पराजित होकर रही।

---

*'फेड इन'का तात्पर्य होता है—ध्वनिका धीरे-धीरे स्पष्ट हो जाना। इसके लिए अभिनेता दूरसे बोलता हुआ धीरे-धीरे माइक्रोफोनके निकट आ जाता है। इसकी पूरी चर्चा आगे 'रेडियो-रगमच' शीर्षक अध्यायमे की गयी है।

इस प्रकार मूल कथावस्तुमे विना किसी व्याघातके उसके एक वहुत वडे अशका रूपान्तर कर दिया गया है। रूपान्तर करनेमे वडे-वडे अशोको तो सक्षिप्त करना ही पडता है, पर कही-कही दृश्योका स्थान-परिवर्त्तन भी करना पडता है। रगमचके नाटकोमे पात्र दर्शकोंके सम्मुख रहते हैं, और दर्शक उनकी आकृतियोमे परिचित हो जाते हैं, भले ही उनका पूरा परिचय उन्हे न प्राप्त हो। फलत नाटककी कथावस्तु समझनेमे कोई कठिनाई नही होती। पर रेडियो-नाटक केवल ध्वनियोपर ही निर्भर है। उसमे रगमच-नाटककी उपर्युक्त सुविधा नही रहती। कुछ नाटकोका रेडियो-रूपान्तर करते समय यह कठिनाई सामने आ जाती है। उदाहरणके लिए 'स्वप्नवासवदत्ता' का प्रथम अक है। प्रथम अकके शुरूमे ही एक संकेत है—'परिव्राजक वेशधारी यौगवरायण और आवतिका वेशधारिणी वासवदत्ताका प्रवेश'। प्रथम अकके मध्यमे इनके स्वगत-कथनसे इनका परिचय मिलता है। वही व्रह्मचारीके कथनसे इनके गुप्त रहस्यका पता चलता है। यदि रेडियो-रूपान्तर मूल नाटककी ही तरह प्रारभ किया जाय, तो श्रोताओंके लिए वह सहज वोध-गम्य नही हो सकेगा। इसलिए रूपान्तरमे नाटक इस प्रकार प्रारभ होता है—

(प्रारभिक वाद्य-संगीतके वाद कोलाहल, आह्-चीत्कार, 'आग-आग' 'भागो, भागो'की ध्वनियां)

यौगन्धरायण—क्या हुआ आर्य ?

पुरुष—नही जानते ? समूचा गाँव भस्म हो गया !

यौगन्धरायण—भस्म हो गया ? कौन-सा गाँव था आर्य ?

पुरुष—यही तो वत्सराजमे विख्यात लावणक ग्राम था ! महाराज उदयनका शिविर यही तो था !

यौगन्धरायण—तव ?

पुरुष—महाराज उदयन आखेट खेलने गये थे, तवतक गाँवमे आग लग गयी ! और महाराजकी प्राणोंसे भी प्रिय पत्नी वासवदत्ता जल मरी।

यौगन्धरायण—जल मरी ?

पुरुष—हाँ आर्य ! लोग कहते हैं, उसे बचानेके लिए मन्त्री यौगन्धरायण आगमे कूद पड़े।

यौगन्धरायण—उनका क्या हुआ ?

पुरुष—वे भी भस्म हो गये !

यौगन्धरायण—फिर ?

पुरुष—उसके बाद मुझे ज्ञात नही। अच्छा आर्य, मुझे देर हो रही है, मैं चला।

यौगन्धरायण—अच्छा, जाइए। (तनिक ठहरकर, हँसते हुए) लोग कहते हैं, महाराज उदयनका मन्त्री यौगन्धरायण जल मरा, और मैं अभी जी रहा हूँ। महारानी वासवदत्ता भी अभी जीवित ही है। ठीक है, जैसा मन्त्रियोमे निश्चित हुआ था, वैसा हो रहा है। जब मेरे स्वामी समूचे वत्सदेशपर अधिकार कर लेगे, तब मैं महारानी वासवदत्ताको लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होऊँगा। तबतक विरह-दग्ध महाराज उदयनकी सेवा मन्त्री रुमण्वान करेगा ही। अच्छा, अब महारानीको मुझे किसी सुरक्षित स्थानमे पहुँचा देना चाहिए।

घटनाओ और पात्रोंके सबधमे इतना परिचय प्राप्त कर लेनेके बाद श्रोताओंको नाटक समझनेमें कोई कठिनाई न होगी।

इन परिवर्त्तनोंके अतिरिक्त कुछ और भी बाते है, जिनपर ध्यान देना आवश्यक होता है। पहली बात तो है, रेडियो-नाटककी सीमित अवधि, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। बड़े-बड़े नाटकोकी अप्रासंगिक कथाओ को काट-छाँटकर नाटककी अवधि कम करनी पड़ती है। सभव है, कुछ नाटकोकी अवधि कम न की जा सके। वैसी स्थितिमे फेलिक्स फेल्टनकी राय है कि नाटकका रूपान्तर प्रसारित ही न किया जाय। उसने कहा है—‘Where the play cannot be reduced to the time

allowed without real damage it should obviously not be broadcast.'

ध्यान देनेकी दूसरी बात है पात्रोकी सख्या। रगमचपर अनेक पात्र एक ही साथ उपस्थित हो सकते है, और दर्शकोको उनका परिचय प्राप्त करने और उनकी बाते समझनेमे कोई कठिनाई न होगी। लेकिन रेडियो-नाटकके श्रोताके लिए एक साथ ही अनेक पात्रोसे परिचित होना, उनके नाम याद रखना, उनकी आवाजसे ही उन्हे अच्छी तरह पहचानते रहना मुश्किल है। इसलिए रूपान्तर करते समय रूपान्तरकारके लिए आवश्यक है कि वह एक साथ ही अनेक पात्रोको न आने दे।

साथ ही पात्रोका प्रवेश और प्रस्थान पर भी रूपान्तरकारका ध्यान जाना चाहिए। रगमचपर प्रवेश और प्रस्थानकी कोई असुविधा नही है। दर्शक पात्रोको रगमचपर आते, और वहाँसे विदा लेते देखते ही रहते है, पर रेडियो-नाटकके श्रोताओको इन बातोसे परिचित कराते रहनेके लिए लेखकको सजग रहना पडता है। बहुत अश तक यह काम प्रस्तुतकर्त्ताओ (Producers) पर निर्भर है कि कौन पात्र माइक्रोफोनसे किस तरफ बोले, कितनी दूरसे बोले अथवा किस प्रकार बोलता हुआ माइक्रोफोनसे दूर हटता जाये।

पात्रोसे सबधित एक बात और है। रगमचके नाटकोमे हम देखते है कि कभी-कभी दो पात्र आपसमे बहुत देर तक बाते करते रहते है, और तीसरा पात्र, जिसके बोलनेकी आवश्यकता नही रहती, मौन होकर सुनता रहता है, और कुछ समयके बाद बोलता है। दर्शक उसे देखते रहते है, और उन्हे इसमे कोई खटकनेवाली बात नही दिखायी देती। पर रेडियो-नाटकके श्रोताके लिए यह बात चौका देनेवाली है। एकाएक तीसरे पात्रकी आवाज सुनकर वह समझ नही पाएगा कि वह कहाँसे आ गया। तात्पर्य यह कि रेडियो-नाटकमे किसी पात्रको बहुत देरतक मौन नही रखा जा सकता। उदाहरणके लिए ऊपर उद्धृत 'अम्बपाली' का रूपान्तरित अश देखिए। प्रारभमे मधूलिकाकी कुछ पक्तियाँ श्रोताओंको इस बातकी सूचना

देनेके लिए ही दी गयी है कि अम्बपाली जब सपना देख रही है, तब मधूलिका भी वही है, जिससे अम्बपालीके जागनेपर मधूलिकाका उससे बातें करना असगत न लगे।

रगमचपर ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती है, जब सभी पात्र पूर्णत मौन हो जायँ, पर रेडियो-नाटकमे ऐसी परिस्थिति कभी नही आ सकती। रेडियोपर पन्द्रह सेकेडकी शाति भी बहुत अधिक होगी। अत रूपान्तर करते समय वैसी परिस्थितियोकी अभिव्यक्ति भी ध्वनियोके ही द्वारा होनी चाहिए।

रगमच-नाटकोंके दर्शकोको यह समझनेमे कभी कोई कठिनाई नहीं होती कि कौन पात्र किससे बोल रहा है। उनमे पात्र बारी-बारीसे अनेक पात्रोकी ओर घूम-घूमकर उनसे बाते कर सकता है, पर रेडियो-नाटकोंमे यह सुविधा नही है। अत रूपान्तर करते समय रेडियो-नाटककी इस सीमा-की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

रूपान्तर करते समय अनेक स्थलोपर रूपान्तरकारको मूल नाटकमे परिवर्त्तन करने पडते है, यह ऊपरकी बातोंसे स्पष्ट हो चुका है। कहीं-कही अपनी ओरसे भी कुछ अश या दृश्य जोडने पडते है। वैसी परिस्थितिमें रूपान्तरकारको अपनी भाषा और शैली-सबधी शक्तिका परिचय देना होता है। नये जोडे गये अशोकी भाषा-शैली मूल नाटककी भाषा-शैलीसे बिलकुल मिलती-जुलती होनी चाहिए, जिससे श्रोता मूल नाटक और उसके रूपान्तर में जोडे गये नये अशोमे कोई अतर न पा सके।

इन बातोंसे यह स्पष्टत ज्ञात हो जाता है कि रंगमच-नाटकोंके रेडियो-रूपान्तरका अर्थ केवल यही नही है कि किसी नाटकको काट-छाँटकर उसकी अवधि कम कर दी जाय, रगमचके सकेतोको हटा दिया जाय, कथनोपकथन मे पात्र एक-दूसरेको नामसे सबोधित करें। इसका अर्थ है—एक नये माध्यम-के अनुरूप नाटकके स्वरूप-विधानमे पूर्ण परिवर्तन।

कहानियोंके रेडियो-रूपान्तर

रगमच-नाटकोके रेडियो-रूपान्तरकी भाँति छोटी कहानियोके भी रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किये जाते है। इनमे अनेक सुविधाएँ भी प्राप्त है। आजके कर्म-व्यस्त युगमे मनुष्य बडे उपन्यासो और नाटकोसे बचनेका प्रयास करता है। उसकी माँग कम-से-कम समयमे अधिक मनोरजन एव आनदकी होती है। साथ ही बहुत लोग प्रसिद्ध कथाकारोकी कृतियोसे परिचित होना चाहते हैं, पर पुस्तक उठाकर उन्हे पढ लेनेका धैर्य उनके पास नही होता। और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्णनात्मक कहानियोकी अपेक्षा नाटकोमे अधिक प्रभावोत्पादकता और मनोरजकता होती है। इन बातोंसे समझा जा सकता है कि सुप्रसिद्ध कहानी-लेखकोके रेडियो-रूपान्तर बडे लोक-प्रिय हो सकते है। रूपान्तर इसी दृष्टिसे किये भी जाते है।

कहानियोके रेडियो-रूपान्तरको साधारणत बहुत सरल समझा जाता है, पर बात ऐसी नही है। सफल रेडियो-रूपान्तर उतना ही कठिन है, जितना किसी मौलिक नाटककी रचना। मौलिक नाटककी रचनामें जिस कल्पना-शक्ति और सूझकी अपेक्षा होती है, वही रूपान्तरके लिए भी आवश्यक है। साथ ही इसमे अपने नवीन माध्यमका पर्याप्त ज्ञान और अनुभव भी अपेक्षित है।

कहानियाँ पढी जानेके लिए लिखी जाती है। उनका रूपान्तर करनेका अर्थ है, उन्हे एक नये माध्यमके उपयुक्त बनाना। इसके लिए रूपान्तरकारको सबसे पहले यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि कहानियाँ अपने मौलिक रूपमे भले ही पढ दी जायँ, पर 'नाटक' कहकर प्रसारित नही की जा सकती। साथ ही, यह भी समझ लेना आवश्यक है कि किसी कहानीके रेडियो-रूपान्तरका मतलब केवल यही नही है कि उसे कथनोपकथनके माध्यमसे कह दिया जाय, बल्कि यह भी कि उसमे नाटकीय तत्त्वोका समावेश किया

जाय, उसका नाटकीकरण कर दिया जाय। यदि ऐसा नहीं होता, तो उसे सफल रूपान्तर नहीं कहा जाएगा। इस सबंधमे चार्ल्स हैटनका कहना है—'In converting the short story into radio form, the whole effect has to be heightened and made more dramatic if it is to be successful Otherwise, the B B C. might just as well engage a competent performer to read the original story'. इन बातोको उदाहरण-द्वारा समझनेमे सुविधा होगी। 'प्रसाद'जीकी सुप्रसिद्ध कहानी 'इन्द्रजाल'का प्रारभिक अश इस प्रकार है—

'गाँवके बाहर, एक छोटेसे बजरमे कजरोका दल पडा था। उस परिवारमे टट्टू, भैसे और कुत्तोको मिलाकर इक्कीस प्राणी थे। उसका सरदार मैकू, लबी-चौडी हड्डियोवाला एक अधेड पुरुष था। दया, माया उसके पास फटकने नहीं पाती थी। उसकी घनी दाढी और मूँछोके भीतर प्रसन्नताकी हँसी भी छिपी ही रह जाती। गाँवमे भीख मागनेके लिए जब कजरोकी स्त्रियाँ जाती, तो उनके लिए मैकूकी आज्ञा थी कि कुछ न मिलनेपर अपने बच्चोको निर्दयतासे गृहस्थके द्वारपर जो स्त्री न पटक देगी, उसको भयानक दण्ड मिलेगा।

उस निर्दय झुण्डमे गानेवाली एक लडकी थी। और एक बाँसुरी बजानेवाला युवक। ये दोनो भी गा-बजाकर जो पाते, वह मैकूके चरणोमे लाकर रख देते। फिर भी गोली और बेलाकी प्रसन्नताकी सीमा न थी। उन दोनोका नित्य सपर्क ही उनके लिए स्वर्गीय सुख था। इन घुमक्कडोके दलमे ये दोनो विभिन्न रुचिके प्राणी थे। बेला बेडिन थी। माँके मर जाने पर अपने अकर्मण्य पिताके साथ वह कजरोके हाथ लगी। अपनी माताके गाने-बजानेका सस्कार उसकी नस-नसमे भरा था। वह बचपनसे ही अपनी माताका अनुकरण करती हुई अलापती रहती थी।

शासनकी कठोरताके कारण कजरोका डाका और लडकियोके चुरानेका व्यापार बद हो चला था। फिर भी मैकू अवसरसे नहीं चूकता। अपने

दलकी उन्नतिमे वरावर लगा ही रहता। इसी तरह गोलीके वापके मर जानेपर—जो एक चतुर नट था—मैकूने उसकी खेलकी पिटारीके साथ गोलीपर भी अधिकार जमाया। गोली महुअर तो वजाता ही था, पर वेलाका साथ होनेपर उसने वांसुरी वजानेमे अभ्यास किया। पहले तो उसकी नट विद्यामे वेला भी मनोयोगसे लगी, किंतु दोनोको भानुमती-वाली पिटारी ढोकर दो-चार पैसे कमाना अच्छा न लगा। दोनोको मालूम हुआ कि दर्शक उस खेलसे अधिक उसका गाना पसद करते है। दोनोका झुकाव उसी ओर हुआ। पैसा भी मिलने लगा। इन नवागन्तुक वाहरियो-की कजरोके दलमे प्रतिष्ठा वढी।

वेला सावली थी। जैसे पावसकी मेघमालामे छिपे हुए आलोक-पिण्ड-का प्रकाश निखरनेकी अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीरके भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोलीके स्नेहकी मदिरासे उसकी कजरारी आखे लालीसे भरी रहती। वह चलती तो थिरकती हुई, वाते करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारो ओर विखरी रहती। फिर भी गोलीसे अभी उसका व्याह नही हुआ था।

गोली जव वासुरी वजाने लगता, तव वेलाके साहित्यहीन गीत जैसे प्रेमके माधुर्यकी व्याख्या करने लगते। गांवके लोग उसके गीतोंके लिए कजरोको शीघ्र हटानेका उद्योग नही करते। जहाँ अपने अन्य सदस्योंके कारण कजरोका वह दल घृणा और भयका पात्र था, वहाँ गोली और वेलाका सगीत आकर्षणके लिए पर्याप्त था, किंतु इसीमे एक व्यक्तिका अवाछनीय सहयोग भी आवश्यक था। वह था भूरे, छोटी-सी ढोल लेकर उसे भी वेलाका साथ करना पडता था।

भूरे सचमुच भेडिया था। गोली अधरोसे वाँसुरी लगाये, अर्द्ध-निमी-लित आंखोके अतरालसे, वेलाके मुखको देखता हुआ जव हृदयकी फूंकसे वासके टुकडेको अनुप्राणित कर देता, तव विकट घृणासे ताडित होकर भूरेकी भयानक थाप ढोलपर पड जाती। क्षण-भरके लिए जैसे दोनो चौंक उठते।'

प्रश्न यह है कि इस अशको नाटकीय रूप कैसे दिया जाय ? इस समूचे अशमे केवल विवरण ही है, इसमे कोई गति नही, कोई घटना नही, कोई सघर्ष नही । स्पष्ट है कि अपने मौलिक रूपमे इसे कोई पढ भले ही दे, इसका अभिनय नही किया जा सकता । अत रूपान्तर करनेके लिए हमे इसकी प्रमुख बातोको ध्यानमे रखकर बिलकुल भिन्न प्रकारसे लिखना होगा । इसका रूपान्तर इस प्रकार किया जा सकता है—

(वाद्य-सगीतसे दृश्य आरम्भ)

आदमी—क्यो भूरे, मौज है न ?

भूरे—मौज क्या खाक है !

आदमी—क्यो, तू तो हमेशा बेलाके साथ रहता है !

भूरे—साथ रहनेमे क्या हुआ ?

आदमी—बेलाके गीत तेरे ढोलपर ही तो चलते है ।

भूरे—लेकिन गोलीकी बाँसुरीके सामने बेला मेरा ढोल पसद करे, तब तो !

आदमी—पर तेरे ढोलके बिना वह गा भी तो नही सकती ?

भूरे—यह ठीक कहा तुमने ! नही तो बेला और गोली मुझे अपने पास फटकने देते ? बेला मुझसे घृणा करती है, गोली मुझसे दूर-दूर रहता है, लेकिन करे तो क्या ! मुझे अपने पास रखना ही पडता है !

आदमी—लेकिन बेला तुझसे जब प्रेम ही नही करती, तो साथ रहनेसे क्या होगा ?

भूरे—प्रेम करे या न करे, वह मेरी है ! मै गोलीसे उसका ब्याह कभी न होने दूँगा ।

आदमी—क्या करोगे तुम ?

भूरे—क्या करूँगा, देखना क्या करता हूँ !

(वाद्य-सगीतसे दृश्य-परिवर्तन)

कथाकार—गाँवके बाहर एक छोटे-से बजरमें कजरोका दल पडा

था। वही कजरोकी झोपडियोके पास ही पलासके छोटे-से जगलमे——

बेला——(खिलखिलाकर हँसना)

गोली——अरी पगली, हँसती ही रहेगी ?

बेला——और क्या करूँ ?

गोली——भीख माँगने नही चलेगी ? समय तो हो गया।

बेला——होने दो गोली, मैंने समयका कुछ लिया है थोडे ही ? (हल्की हँसी)

गोली——नही बेला, सरदार मैकू आएगा, तो जान ले लेगा।

बेला——सरदार मैकू !——उसका तो नाम ही सुनकर मेरा दिल दहल जाता है।

गोली——वह राक्षस है बेला, राक्षस ! दया, माया उसके पास है ही नही।

(कुछ दूरपर लोगोकी हलचल)

बेला——यह कैसा शोर-गुल है गोली ?

गोली——सुनो बेला, सरदार मैकू किसीको डॉट रहा है।

(कुछ दूरपर बच्चेके रोनेकी आवाज़)

मैकू——(दूरसे*——क्रोधके स्वरमें)——जा मैना, गॉवसे भीख माँग ले आ ! बिना भीख लिये लौटेगी तो खैरियत नही। जिस दरवाजेपर भीख न मिले, उसपर अपने बच्चेको पटक देना। समझी ? जा जल्दी !

बेला——क्यो गोली, सरदार मैकूका दिल पत्थरका है क्या ?

गोली——हाँ बेला, इसीलिए तो कहता हूँ, चल जल्दी, भीख माँगने चले ! भूरे हमे खोज रहा होगा !

---

* 'दूर से' का तात्पर्य है——माइक्रो-फोन से दूर रह कर। स्थान की दूरी व्यजित करनेके लिए ऐसा किया जाता है।

बेला—खोजने दो उसे।

गोली—मुझे देखकर मन ही मन जलता है।

बेला—जलकर क्या करेगा ?

गोली—बेला, तू इन कजरोंके बीच रहने लायक नहीं। तू यहाँ चली कैसे आयी ?

बेला—कैसे चली आयी, क्या बताऊँ। अच्छी तरह याद भी तो नहीं है। लेकिन गोली, मेरी माँ मुझे बहुत प्यार करती थी। उसीसे मैंने गीत गाना सीखा था, पर उसके मरनेके बाद कोई प्यार करनेवाला न रहा। पिता शराबी और आलसी थे, सैकूके साथ रहने लगे। करती क्या, मैं भी यहीं रहने लगी। और, तुम गोली ? तुम यहाँ कैसे आये ?

गोली—मेरा भी कोई नहीं था बेला। मेरे पिता बड़े अच्छे नट थे। भीख माँगनेके लिए जो खेल रोज करता हूँ, सब मैंने उन्हींसे सीखे थे। लेकिन पिताके मरनेके बाद मैं बेसहारा हो गया। सैकूने मुझे पकड़कर अपने पास रख लिया। मैंने भी समझा, अच्छा ही हुआ। और अब तो मुझे कुछ नहीं चाहिए, तुम मेरे साथ हो गयी हो।

बेला—हाँ गोली, मुझे भी यही लगता है। तुम्हारे साथ रहकर कोई कमी नहीं खलती। मेरी खुशी तो तुम्हीं हो।

गोली—धुत् पगली।

बेला—(हँसी)।

गोली—अच्छा, चल अब, बहुत देर हो गयी है।

(वाद्य संगीतसे दृश्य-परिवर्त्तन)

इस प्रकार कहानीके प्रारम्भिक अंशकी सभी प्रमुख बातें रूपान्तरमें चली आती हैं, साथ ही भूरे और गोलीके बीच द्वन्द्वकी भावना (जो कहानीमें है) उपस्थित कर देनेसे नाटकीयता भी आ जाती है।

'इन्द्रजाल'के ऊपर दिये गये उद्धरणमे तो पात्रोका वार्तालाप बिलकुल नही है, पर कुछ कहानियां ऐसी होती है, जिनमे कहानीकार कहानी कहते-कहते आवश्यक समझनेपर पात्रोके कथनोपकथन भी लिख देता है। वैसी कहानियोके भी रूपान्तरमे केवल इतनेसे काम नही चल जाएगा कि कोई नैरेटर कहानी पढता जाये, और कथनोपकथनवाले प्रसगोका अभिनय कर दिया जाय। रूपान्तरकारको उनका भी नाटकीकरण करना चाहिए। चार्ल्स हैटनका विचार है* कि जिस कहानीका रूपान्तर करना हो, उसके कथानकको लेकर फिरसे नयी रचना तैयार करनी चाहिए। इसमे मौलिक कहानीके वे ही अश रखे जा सकते है, जो उचित और अनिवार्य समझे जायँ। हैटनका कथन बहुत अशोतक सत्य है, पर यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता कि किसी रूपान्तरमे कहानी-लेखक और रूपान्तरकारकी मौलिक रचनाएँ किस अनुपातमे रहेगी। कहानी-कहानीके अनुसार यह अनुपात बदलता रहेगा।

बहुत-सी कहानियोमे ऐसे प्रसग मिलते है, जिनमे किसी एक ही पात्रकी मानसिक स्थिति या उलझनका चित्र उपस्थित किया जाता है। वैसी परिस्थितियोमे रूपान्तरकारके सम्मुख बडी कठिन समस्या आती है, क्योकि रूपान्तरमे कथनोपकथन चाहिए, लेकिन जहा एक ही पात्र हो, वहाँ कथनोपकथन सभव नही दीखता। उदाहरणके लिए, स्वर्गीय होमवतीजीकी कहानी 'गोटेकी टोपी'का एक प्रसग इस प्रकार है—

---

* 'To my mind, the ideal method is to use the author's plot and rewrite in this manner, using any of the author's dialogue sequences which are particularly pertinent I maintain that the resultant script should contain roughly one part of the adapter's original work to two parts of the short story writer's

Charles Hatton (Radio Plays)

'जब रातको नवल घरमे आया तो उसका मन बहुत ही अशात और दुखी-सा था। मित्रोके विशेष आग्रह करनेपर आज वह सिनेमा देखने चला ही गया। खेल था—"देवदास"। पार्वतीका प्रेम, उसकी मूक भाषा तथा चुभते हुए भाव और पत्तोके विवश जीवनका प्रभाव नवलके हृदयमे रेखाएँ-सी खीच गया। देवदासकी दुर्दशाको देखकर तो उसकी आँखे रोते-रोते लाल ही हो गयी थी। मित्रोने न जाने कितना मजाक उडाया, फिर भी वह अपनेको रोक न सका। गिरता-पडता घर आकर वह अपने कमरेमे पडी हुई आराम-कुर्सीपर लेटकर न जाने क्या-क्या सोचता रहा। अचानक कैंचीके गिरनेकी-सी आवाज़से वह चौंक उठा। देखा, मजरी बहुत-से कपडोका ढेर लगाये, ठीक उसके कपडोकी आलमारीके सामने बैठी हुई कुछ सी रही है। नवल एकदम कुर्सीसे उठकर खडा हो गया, कौतूहलका कुछ पारावार न था। "इतनी रातको मेरे कपडे ठीक कर रही है? अकेली मेरे कमरे मे! अम्माँ क्या कहती होगी? चाची ही क्या कहेगी? मजरीको मेरी इतनी चिंता क्यो है? वास्तवमे मेरी वह कौन है?" इत्यादि बातोने नवलके मस्तिष्कमे हलचल-सी मचा दी। जो कुछ अभी वह देखकर आ रहा था, जो कुछ अब देख रहा था, हृदयको उद्वेलित करनेके लिए यह सब कुछ क्या कम था? वह धीरे-धीरे बाहर चला आया। दालानमें आकर, बडे साहससे माँको आवाज़ दी, चाचीको पुकारा—"मुझे दूध दे जाओ।" आज उसकी हिम्मत मजरीसे दूध मागनेकी न हुई। माँने कहा—"आज मेरे पैरोमे बडा दर्द है।" चाचीने उत्तर दिया—"आयी भैया! देख तो, मजरी इसी आसरेमे कही बैठी होगी, मुन्नूको अकेला कैसे छोड आऊँ?" नवलकी आवाज सुनकर मजरीका ध्यान टूट गया। जल्दी-जल्दी कपडोको यूँ ही सरकाकर वह बाहर निकल आयी। नवल ठगा हुआ-सा यह सब देख रहा था। पर मजरीके हृदयमे न कोई भाव ही दीख पडता था और न नेत्रोमे कोई कौतूहल ही नाच रहा था। जल्दीसे चौकेमें गयी और दूधका गिलास भर लायी। बुआने उसके हाथसे गिलास लेकर कहा—"जा, लल्ला अकेला है, मैं दूध दे आऊ।"

रातको नवल बहुत देरतक जागता रहा, नीद आती ही न थी। एक-के बाद एक-एक करके उसके मस्तिष्कमें विचार आने-जाने लगे। नवलको उस दिनकी बात भी याद हो आयी, जब वह दालानमे खडा अपनी कमीजमे बटन टॉक रहा था। मजरी देखती हुई उसके सामनेसे निकल गयी, परन्तु यह नही कहा कि तुम्हे क्या बटन टाँकना आयेगा, या कॉलिजको देर हो जाएगी, लाओ मै ही लगा दूं। नवलने उस दिन मन-ही-मन कहा था —"कितनी अभिमानिनी लडकी है।" पर आज उसके हृदयसे वह भाव कितनी जल्दी लुप्त होकर केवल थोडा-सा पश्चात्ताप छोड गया। यह स्वय नवल भी ठीक-ठीक न समझ सका।'

इस अशमे नवलके मनकी उद्विग्नता एव भाव चित्रित है। बीचमे एक घटना दूध-वाली आयी है, पर मनोविश्लेषणकी दृष्टिसे उसका कोई महत्त्व नही है। नवल अकेला है, तब यह प्रश्न है कि उसके मनके भावोको कैसे चित्रित किया जाय। अगर नवलका कोई घनिष्ठ मित्र रहता, तो उससे इस विषयपर बाते करायी जा सकती थी, पर वैसा कोई पात्र कहानीमे नही है। अत इसके रूपान्तरमे नवलके मनको ही एक पात्रके रूपमें खडा कर दिया गया है। रूपान्तर इस प्रकार है —

मन—इतनी रात हो गयी, क्या तुम आज सोओगे नही ?

नवल—मै नही सोऊँगा, इसमे तुम्हारा क्या ?

मन—है क्यो नही ? तुमसे कहना मेरा कर्त्तव्य है।

नवल—वाह रे कर्त्तव्य करनेवाले ! आखिर तुम हो कौन ?

मन—मुझे नही पहचानते ?

नवल—पहचानता, तो पूछता क्यो ? कमरेमे तुम्हे कही देख नही रहा हूँ !

मन—आश्चर्य है, तुम मुझे नही देखते ! मै तुम्हारे साथ हूँ, चौबीस घटे तुम्हारे साथ रहता हूँ, तुम्हारे भीतर रहता हूँ, तुम्हारा मन हूँ मै।

नवल—मेरे मन हो तुम! अच्छा किया, मेरी समस्या सुलझाने चले आये!

मन—समस्या सुलझाने नही, मैं तुमसे कहने आया हूँ कि रात बहुत हो रही है, अब तुम सो जाओ!

नवल—रात बहुत हो गयी?

मन—तुम्हे यह भी पता नही? एक तो यो ही देरमे लौटे हो! 'देवदास' फिल्म देखने गये थे न?

नवल—'देवदास'की अच्छी याद दिलायी। उसीकी बात तो मैं कबसे सोच रहा हूँ।

मन—अब सोचनेको क्या है? कैसे विचित्र आदमी हो? भला फिल्म देखकर रोया जाता है?

नवल—यही तो मेरे साथियोने कहा था!

मन—हाँ-हाँ, वे तुमपर हँस रहे थे।

नवल—मैं जानता हूँ, वे मुझपर हँस रहे थे, लेकिन मेरी आँखे भर-भर आती है, तो मैं क्या करूँ?

मन—कितने कमजोर हो तुम!

नवल—तुम्हे जो इच्छा हो, कह लो, पर देवदासकी दुर्दशा देखकर तो मैं अपनेको रोक नही पाता। अभी भी उसकी स्मृति मे अतर मचल उठता है। और, उसमे भी करुण कथा तो पार्वतीकी थी! बेचारी तडपती रही, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। नारीका जीवन कितना विवश होता है!

मन—आज तुम बहुत अशात हो नवल! सबेरेसे ही तुम्हे अशात देख रहा हूँ। आज सबेरेसे तुमने कुछ खाया भी नहीं!

नवल—खाता कैसे? यह छुआछूत!

मन—यह छुआछूतकी बात नहीं नवल! तुम मजरीकी ओर खिचते जा रहे हो!

नवल—यह क्या कह रहे हो तुम?

मन—मैं सत्य कह रहा हूँ।

(पत्थरपर कैंची गिरनेकी आवाज़)

नवल—कौन ?

मंजरी—(संकोचसे) जी, मैं हूँ। ये कपडे फट गये थे, इन्हे ठीक कर रही थी।

नवल—इतनी रातको ?

मंजरी—माफ कीजिए, आपकी नीद टूट गयी।

नवल—मैं अभी सोया नही था।

मजरी—अच्छा, अब सोइए, मैं जा रही हूँ।

(किवाड़ खुलने-बंद होनेकी आवाज़)

मन—देखा तुमने ?

नवल—हाँ मेरे मन, देखा। वह मेरे कपडे ठीक कर रही थी। इतनी रातको। अकेली मेरे कमरेमे। अम्माँ क्या कहती होगी? चाची ही क्या कहेगी ? मजरीको मेरी इतनी चिन्ता क्यो है ? कौन है वह ? वास्तवमे मेरी वह कौन है ? कौन है मजरी मेरी ?

मन—अशात न हो नवल !

नवल—अशात न होऊँ ? क्या करूँ मैं ?

मन—याद है उस दिनकी बात ? तुम दालानमे खडे अपनी कमीजमे बटन टाँक रहे थे, मजरी सामनेसे निकल गयी, लेकिन उसने यह न कहा कि तुम्हे कालिजको देर हो जाएगी, लाओ, मैं ही लगा दू।

नवल—और, उस समय मैंने सोचा था, कितनी अभिमानिनी लडकी है! लेकिन आज क्या देख रहा हूँ मैं ?

मन—देखते जाओ, अधिक न सोचो। क्या तुम्हे पता है कि तुम्हारी अनुपस्थितिमे मजरी किस तरह तुम्हारा कमरा साफ़ कर जाया करती है ?

नवल—हाँ, पता है। इसीलिए तो सोचता हूँ, कौन है मजरी मेरी ? मुझसे उसका क्या सबंध है ?

मन—कुछ नही ! वह विधवा है। तुम सयममे रहो। अधिक न सोचो। रात बहुत बीत गयी है। अब सो जाओ। विश्राम करो।

(वाद्य सगीतसे दृश्य-परिवर्तन)

इस प्रकार रूपान्तरकार मौलिक कहानीके रूपान्तरमे आनेवाली विभिन्न समस्याओको विभिन्न प्रकारसे सुलझा सकता है। इसके लिए कोई एक निश्चित नियम नही। रूपान्तरकारको केवल देखना यही है कि रूपान्तर अधिक-से-अधिक नाटकीय और प्रभावोत्पादक बन सके।

'गोटेकी टोपी'से उद्धृत अशका, जिसमे एक ही पात्र हमारे सामने उपस्थित रहता है, रेडियो-रूपान्तर करते समय स्वगत-कथनका व्यवहार किया जा सकता था, पर यहाँ स्वगत-कथन कुछ बडा होता और उसमें अधिक नाटकीयता भी नही आती, लेकिन ऐसे ही दूसरे प्रसगोमे आवश्यकता पडनेपर स्वगत-कथनका उपयोग बडी सरलतासे किया जा सकता है। रगमच-नाटकोंमे स्वगत-कथन अस्वाभाविक-जैसा लगता है, पर रेडियो-पर यह अस्वाभाविक नही लगता। छोटे-छोटे स्वगत-कथनोमे कोई हानि नही होती, बल्कि उनसे पात्रोकी चारित्रिक विशेषताओ, उनकी मानसिक स्थितियोपर बडे अच्छे ढगसे प्रकाश पडता है।

यदि कोई पात्र अकेला है, तो उसके जीवनकी घटनाओ एव विशेषताओका परिचय देनेके लिए किसी नये पात्रकी सृष्टि भी की जा सकती है, जैसे 'इद्रजाल'के रूपान्तरके प्रारभिक अशमे भूरेके साथ एक आदमी रख दिया गया है। वह 'आदमी' हमारे लिए महत्त्वपूर्ण नही है, महत्त्वपूर्ण है भूरे, पर 'आदमी'के साथ उसकी जो बाते होती है, उन्हीसे हम अपने प्रधान पात्रका परिचय प्राप्त करते है।

पात्रोका परिचय देने अथवा अपेक्षित वातावरण-निर्माणके लिए नैरेटर से भी काम लिया जा सकता है, पर नैरेटरका उपयोग वही होना चाहिए,

जहा वह अनिवार्य हो। यह पहले कहा जा चुका है कि नैरेटर बहुत अधिक न बोले और किसी दृश्यके प्रारभ या अतमे ही आये। अगर वह दृश्योके बीच-बीचमे टपक पडता है अथवा लबे-लबे उद्धरण बोलता है, तो इससे नाटककी गतिमे बाधा पडती है। पर नैरेटरकी पक्तियाँ कभी-कभी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर देती हैं। उदाहरणके लिए 'इद्रजाल'की दो पक्तियाँ 'गाँवके बाहर, एक छोटे-से बजरमे कजरोका दल पडा था। वही, कजरो की झोपडियोके पास ही, पलासके छोटे-से जगलमे' शीघ्र ही कहानीके लिए वातावरण निर्मित कर देती है। यह कार्य केवल कथनोपकथनसे सरलतापूर्वक नही हो पाता।

बहुत-सी कहानियोमे, घटनाएँ बडी शीघ्रतासे बदलती है और दृश्योमे परिवर्त्तन होते जाते हैं। इनका रूपान्तर करते समय छोटे-छोटे बहुत-से दृश्य निर्मित करनेमे सुविधा मालूम होती है। यह सत्य है कि रेडियो-नाटकोमे छोटे-छोटे दृश्य बनानेकी सुविधा है, पर क्षण-क्षण परिवर्त्तन होनेवाले बहुत अधिक दृश्योका व्यवहार उचित नही। प्रत्येक दृश्यका इतना बडा होना आवश्यक है कि वह एक निश्चित वातावरण तैयार कर सके और पात्रोकी चारित्रिक विशेषताओको समझनेमे सहायक हो। तात्पर्य यह कि प्रत्येक दृश्यमे परिस्थितियो और चरित्रोका विकास स्पष्टत परिलक्षित होना चाहिए। भॉल गिलगुडके शब्दोमे, "The freedom given by the microphone from the static conventions of the theatre does not free the writer from the necessity of establishing both situations and characters firmly before his audience and allowing both of them time to develop"

इसका यह तात्पर्य कभी नही समझना चाहिए कि छोटे दृश्य कभी लिखे ही न जायँ। अपेक्षित प्रभावकी सृष्टिके लिए कभी-कभी छोटे-छोटे दृश्य बिल्कुल अनिवार्य हो उठते है। उदाहरणके लिए, 'गोटेकी टोपी'का ही एक अश देखिए—

'इतने थोड़े ही समयमें, इस घरके लिए वह ऐसी हो गयी मानो सदासे ही यहाँसे उसका कोई घनिष्ठ नाता है! यहाँ तक कि दो-चार बार मना करनेके उपरांत बड़ी बुआ अब मंजरीसे ही तेलकी मालिश कराना अधिक पसंद करती हैं। बदन तो आजतक उनका वैसा किसीने दबाया ही नहीं, जैसा मंजरीको दबाना आता है। इतना ही नहीं, धोबीकी धुलाई तथा ग्वालेके दूधका हिसाब भी उसे ही जोड़ना पड़ता है। शामको बिस्तरे तक बिछवाना उसीके जिम्मे आ पड़ा है। यद्यपि मंजरीको वैसा तो अधिकार किसीने दे नहीं रक्खा है, फिर भी महरीसे लेकर घरकी मेहतरानी तकका दुखड़ा उसे सुनना पड़ ही जाता है। नवलके पिताको न तो और किसी का बनाया अब खाना ही पसंद आता है, और न भिखारीकी पीसी हुई ठण्डाईमें ही अब मजा आता है।'

रूपान्तरमें इस प्रसंगको इस प्रकार रक्खा गया है—

हरप्यारी—(तनिक दूरसे) मंजरी!

मंजरी—आयी बड़ी बुआ!

हरप्यारी—नवलके बाबूजी शर्बतके लिए बैठे हुए हैं।

मंजरी—अभी बनाये देती हूँ।

हरप्यारी—जा, देर न कर। वे दूसरेके हाथकी ठण्डाई पीते नहीं, नहीं तो मैं कभी बनवा लेती!

मंजरी—मैं जा रही हूँ, देर न होगी!

(संक्षिप्त संगीत)

हरप्यारी—मंजरी!

मंजरी—(निकट आती हुई) क्या है बड़ी बुआ?

हरप्यारी—धोबी कपड़े ले आया है। जा, कपड़े मिला ले। गंदे कपड़े भी आज ही दे देना। देखना, कोई छूटने न पाये। मेरी भीगी साड़ी वहाँ रखी हुई है।

मंजरी—अच्छा।

(संक्षिप्त संगीत)

हरप्यारी—मेरे पैर कबसे दर्द कर रहे हैं। तेरा पता ही नहीं है।

मंजरी—तीन-चार बर्तन और मलनेको रह गये हैं।

हरप्यारी—उनके लिए क्या रातभर जगी रहूँगी ?

मंजरी—पहले मैं पैर ही दबा देती हूँ। अभी तेल लेकर आयी।

(संगीत)

शीघ्रतासे परिवर्तित होनेवाले इन छोटे-छोटे दृश्योंके द्वारा मंजरीकी कार्य-व्यस्तता दिखलानेका प्रयत्न किया गया है। साथ ही इनसे मंजरीकी सरलता एवं आज्ञाकारिता तथा हरप्यारीके कठोर व्यवहारकी भी झलक मिल जाती है। आवश्यकता पड़नेपर इस तरहके छोटे-छोटे दृश्योंसे काम लिया जा सकता है।

रूपान्तरमें कथनोपकथनपर भी पर्याप्त ध्यान आवश्यक है। कहानीकार अपने पात्रों, परिस्थितियोंके बारेमें स्वयं भी कहता है, पात्रोंके वार्त्तालापोंके माध्यमसे भी कहता है। उसका कार्य सरल है। लेकिन रूपान्तरकारके पास केवल एक ही साधन है—वार्त्तालाप। वार्त्तालापोंके द्वारा ही उसे सब कुछ कहना पड़ता है। पात्रोंका चरित्रांकन भी इसके ही द्वारा करना होता है। अतः रूपान्तरकारके लिए आवश्यक है कि वह मूल कहानीमें चित्रित पात्रोंके चरित्रसे भली-भाँति अवगत हो ले, तब उनके अनुरूप ही कथनोपकथन लिखे। वार्त्तालापोंके द्वारा पात्रोंका चारित्रिक विकास स्पष्ट परिलक्षित होना चाहिए।

दूसरी बात यह कि मूल कहानीमें दिये गये कथनोपकथन अपने मूल रूपमें ही रूपान्तरमें नहीं रखे जा सकते। कहानी पढ़नेके लिए लिखी जाती है, उनके वार्त्तालाप भी पढ़नेके ही लिए होते हैं, अभिनयके लिए नहीं। उन वार्त्तालापोंमें, जैसा कि हम देख चुके हैं, अभिनेयताका गुण नहीं होता। उनमें आवश्यक परिवर्तनकर ऐसा बना लेना कि अभिनेता उन्हें बिना कठिनाईके बोल सकें, रूपान्तरकारका ही कर्त्तव्य है।

उपन्यासोके रूपान्तरके विषयमे भी यहीपर दो शब्द कह देना उचित होगा। कहानियोके रूपान्तरके लिए जो बाते सत्य है, वे ही उपन्यासोके रूपान्तर पर लागू होगी। दोनोमे केवल एक अतर है कि उपन्यास बहुत बडे होते है, उनमे घटनाएँ अधिक होती है, पात्र अधिक होते है। अत ३०-६० मिनटके लिए उनका रूपान्तर करना बहुत कठिन होता है। बडे रगमच-नाटकोके रूपान्तरके सबधमे फेलिक्स फेल्टनने कहा है—'Where the play cannot be reduced to the time allowed without real damage it should obviously not be broadcast' वही दूसरे स्थानपर कहते है—'It is, as we have seen, impossible to reduce a two-hour stage-play of this kind of length, though such butchery is sometimes attempted' उनके अनुसार दो घटोमे अभिनीत होनेवाले नाटकोका रूपान्तर ३०-४५ मिनटके लिए असभव है, उन्हे प्रसारित नही करना चाहिए। ऐसा करना मूल लेखक और उसकी कृतिके साथ अत्याचार है। पर इससे भी बडे अत्याचार विभिन्न रेडियो स्टेशनोसे समय-समयपर किये जाते है, जब चार-पाच सौ पृष्ठवाले उपन्यासोके रूपान्तर ४५ मिनट अथवा ६० मिनटमे प्रसारित होते है। रूपान्तरमे किसी उपन्यासके साथ तभी न्याय हो सकता है,जब वह धारावाहिक रूपमे कई खडोमे प्रसारित किया जाय।

फिर भी यदि कम अवधिके लिए उपन्यासोका रूपान्तर करना ही हो, तो सब अप्रासगिक कथानकोको छाटकर केवल प्रधान कथाको ही रूपान्तरका आधार बनाना चाहिए,यद्यपि यह भी मूल रचनाके साथ अन्याय ही होगा।

रेडियो-फैंटेसी (अति कल्पना)

रेडियो-फंटेसी भी रेडियो-नाटकका एक प्रकार है। 'फंटेसी'का अर्थ है--'कल्पना', और रेडियो-फंटेसीमे काल्पनिक चित्रणकी प्रधानता रहती है। काल्पनिकता तो सभी नाटकोमे होती है, पर रेडियो-फंटेसीके प्रसगमे 'काल्पनिक चित्रण' एक विशेष अर्थमे प्रयुक्त किया जा रहा है। यथार्थ जगत्मे जिन घटनाओका होना सभव नही है, उन्हे रेडियो-फंटेसीमे घटित होते चित्रित किया जाता है, और उनके माध्यमसे किसी विचार या मार्मिक अनुभूतिकी अभिव्यक्ति की जाती है। उदाहरणोके द्वारा यह बात स्पष्ट की जा सकती है।

आज हम देखते है कि विज्ञानकी सहायतासे मनुष्य प्रकृतिपर विजय प्राप्त कर रहा है, पर साथ ही वह विध्वसकारी अस्त्र-शस्त्रोका आविष्कार भी कर रहा है। हमे लगता है कि मनुष्यकी प्रकृति-विजय निरर्थक है। इससे तो अच्छा था वह प्राचीन युग, जब युद्धोमे भी नैतिकताकी रक्षा होती थी। आज जब युद्ध होता है, तब नगर-ग्राम, नागरिक-सैनिक, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, सबपर बम बरसाये जाते है। आजकी नैतिकता प्राचीन युगकी नैतिकतासे कितनी भिन्न हो गयी है। इसकी अभिव्यक्तिके लिए हम सोच सकते है कि अगर प्राचीन युगका कोई मनुष्य आजके ससारको देखता, तो इसके सबधमे क्या-क्या कहता! इसके लिए मैने 'अभिशप्त'मे यह कल्पना की है कि प्रकृति-विजयके आकाक्षी आजके दो व्यक्ति हिमालयपर चढ रहे है, और उन्हे अश्वत्थामासे भेट हो जाती है। ऐसी कल्पनाके लिए आधार भी है। महाभारतमे कहा गया है कि अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रका व्यवहार किया था, पर उसे लौटा लेनेकी क्षमता उसमे नही थी। इसलिए उसे शाप मिला था कि वह तीन हजार वर्षो तक मानव-समाजसे दूर निर्जन प्रदेशोमे भटकता फिरेगा। अत यह कल्पना की जा सकती है

है कि तीन हज़ार वर्ष बीत गये, अश्वत्थामा शाप-मुक्त हो गया और मनुष्यो-से उसकी भेट हो सकती है। 'अभिशप्त' रेडियो-फेंटेसी इसी कल्पनापर आधारित है। यह सही है कि यह घटना यथार्थ जगत्‌मे सभव नही है, पर उसके माध्यमसे जो बाते कही गयी है, वे सत्य है।

एक दूसरी रेडियो-फेंटेसीका उदाहरण लीजिए—'वे अभी भी क्वारी है।' कवीन्द्र रवीन्द्रने अपने एक निबधमे काव्यकी अनेक उपेक्षिताओकी ओर सकेत किया है। उनमे शकुतलाकी सखियाँ प्रियवदा और अनुसूया भी है। कवि कालिदासने उनकी भावनाओके अकनकी ओर ध्यान नही दिया। हमारे मनमे एक जिज्ञासा होती है कि वे क्या सोचती होगी, उनके हृदयमे कैसी भावनाएँ उठती होगी। 'वे अभी भी क्वारी है'का पात्र कला-कार माधव प्रियवदा और अनुसूयाके विषयमे सोचता-सोचता अपनी सुध-बुध खो बैठता है, कालकी लम्बी दूरी पारकर महर्षि कण्व के आश्रम मे जा पहुँचता है और उदास एव भग्न-हृदया सखियोसे बाते करता है।

इस तरह रेडियो-फेंटेसीमे अतीतके पात्रोसे भेट की जा सकती है। इसके अतिरिक्त दूसरी-दूसरी कल्पनाओके आधारपर भी रेडियो-फेंटेसी लिखी जा सकती है। उदाहरणके लिए हम कल्पना कर सकते है कि कोई व्यक्ति जीवनकी उलझनो से ऊब गया है और इनसे बचनेके प्रयत्नमे पक्षीका रूप धारण कर लेता है। किसी मृत व्यक्तिको जीवित व्यक्तिकी तरह बोलते हुए चित्रित किया जा सकता है, समाधिके नीचे दबी हुई किसी सैनिककी आत्मा हमसे बाते कर सकती है। इसी प्रकार अन्य कल्पनाओके आधारपर रेडियो-फेंटेसीकी रचना की जा सकती है।

रेडियोपर फेंटेसी बिल्कुल स्वाभाविक लगती है। रगमचपर किसी स्वप्निल या कल्पनामय वातावरणकी सृष्टि कठिन होगी, पर इसमे सगीतके द्वारा ऐसे वातावरणका निर्माण सरलतासे किया जा सकता है। चूंकि इसमे किसी भी दृश्यको देखनेकी आवश्यकता नही होती, केवल श्रव्य साधनोके द्वारा हमारे मानसिक जगत्‌मे उचित वातावरणकी सृष्टि कर दी जाती है। साथ ही रेडियोपर साधारण एव अलौकिक पात्र बडे स्वाभाविक

ढगमे उपस्थित किये जा सकते हैं। यन्त्रोके द्वारा पात्रोका स्वर भी बदला जा सकता है, जिससे पात्रोकी असाधारणताका ज्ञान सरलतासे हो सकता है। एक उदाहरणसे बात साफ हो जाएगी। 'अभिशप्त'मे अश्वत्थामा एक असाधारण व्यक्ति है, उसकी आकृति, अवस्था, स्वर आदि आजके साधारण मनुष्यसे भिन्न हैं। रगमचपर ऐसे व्यक्तिको उपस्थित करना कुछ मुश्किल है, पर रेडियोपर यह बडी आसानीसे किया जा सकता है।

और सब बातोमे रेडियो-फंटेसी रेडियो-नाटककी ही तरह होती है। रेडियो-नाटककी टेकनीकके विषयमे जो बाते पहले कही गयी है, वे सभी रेडियो-फंटेसीपर भी लागू होगी। दोनोमे अतर केवल काल्पनिकता और अलौकिक अथवा मानवेतर पात्रोको उपस्थित करनेमे है। यह काम सगीत और ध्वनि-प्रभावोके द्वारा किया जाता है।

रेडियो-फंटेसीकी सभावनाएं बहुत अधिक है, पर अभी हमारे यहाँ उनका बहुत कम उपयोग किया गया है। हिंदीमे इस प्रकारकी रचनाएँ बहुत कम लिखी गयी है। इस क्षेत्रमे काम करके अनेक प्रकारकी नयी उद्भावनाएँ की जा सकती है।

मोनोलॉग (स्वगत-नाट्य)

'मोनोलॉग' एक अंग्रेजी शब्द है, जिसका अर्थ है—वह नाटक या नाटकका अंश, जिसमें केवल एक ही व्यक्ति बोलता है। हिंदीमें 'मोनोलॉग' शब्दका भी व्यवहार हो रहा है। इसे 'स्वगत-नाट्य' भी कहते हैं, 'एकपात्री-नाटक' भी। रेडियो-मोनोलॉग भी रेडियो-नाटकका एक प्रकार है। इसमें कोई कथनोपकथन नहीं होता। प्रारंभमें अंततक केवल एक ही व्यक्ति अपनी कहानी कहता है, तथा अपनी भावनाओंको अभिव्यक्त करता है। मोनोलॉगमें कथनोपकथनका नितांत अभाव देखकर यह कहा जा सकता है कि क्या यह भी कोई नाटक है? 'नाटक'की परिभाषा देते हुए एक अंग्रेज लेखकने तो स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि 'नाटक' केवल उन्हीं स्थितियों अथवा रचनाओंके लिए व्यवहृत किया जा सकता है, जिनमें द्वंद्व निहित हो। इसके लिए कम-से-कम दो पात्रोंका सहयोग अपेक्षित है। इसीलिए वर्णन और स्वगत-कथन नाटककी सीमाके परे है।[1] पर मोनोलॉगमें भी अन्तर्द्वंद्वका अंकन किया जाता है। फलतः इसे हम 'नाटक'के अंतर्गत गिन सकते हैं। जब इसे 'नाटक' कहा जाता है, तब तात्पर्य केवल यही होता है कि मोनोलॉगमें नाटकका अपेक्षित द्वंद्व है, वह पढ़नेके लिए नहीं, अभिनयके लिए लिखा जाता है, और कोई कुशल अभिनेता उसे नाटकीय ढंगसे पढ़कर हमें प्रभावित कर सकता है।

---

१. Drama—A term applicable to any situation in which there is conflict and, for theatrical purposes, resolution of that character This implies the cooperation of at least two actors, and rules out narrative and monologue

—The Oxford Companion of the Theatre
(Edited by Phyllis Hartnoll)

मोनोलॉगमे सामान्यत किसी ऐसे पात्रको उपस्थित किया जाता है, जिसका जीवन कुछ विरोधी भावनाओके ताने-बानेसे बुना हुआ होता है। दूसरे शब्दोमे कहे, तो उलझनपूर्ण व्यक्तित्ववाले पात्रोके जीवनकी किसी मार्मिक कथाको मोनोलॉगमे अकित किया जाता है। उदाहरणके लिए श्री विष्णु प्रभाकरके मोनोलॉग 'सडक'की नायिकाको देख सकते हैं। जिसे वह अपना बनाना चाहती है, वह अपना नही बन सका, उसके पतिका मित्र बन जाता है। नायिकाका विवाह हो चुका है, वह चाहती है कि उस युवकको वह भूल जाए, जो उसका अपना नही हो सका, लेकिन ऐसा हो नही पाता, उस युवककी स्मृतियाँ उसके मनमे बार-बार उमडकर चली आती हैं। तब उसे लगता है, जैसे वह अपने पतिके प्रति विश्वासघात कर रही है। स्वय उसके शब्दोमे—

'जिसे अपना बनाना चाहती थी, उसे न बना सकी और जिसने मुझे अपना बनाया, उसके प्रति भी विश्वासघात करती हूँ, विश्वासघात। हा, विश्वासघात । नहीं, नही । नही कैसे ? उसकी याद करना, खिडकीपर आकर रोज़ सडकको देखना यह अपने पतिके साथ विश्वासघात नही, तो और क्या है ? नही, नही, मैं उनसे प्रेम करती हूँ। मैं उनसे विश्वासघात नहीं कर सकती।'

उसके मनकी उलझन स्पष्ट है। उसके हृदयकी दो विरोधी भावनाएँ आपनमे टकरा रही है। नाटकोमे विभिन्न पात्र परस्पर वार्तालाप करते हैं, मोनोलॉगमे एक ही पात्रकी विभिन्न भावनाएँ आपसमे कथनोपकथन करती हैं। 'मोनोलॉगको नाटक कहा जाना इस दृष्टिसे बिलकुल सार्थक है।

यो तो रेडियो-नाटकके सभी प्रकारोमे इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वे श्रोताओकी जिज्ञासा एव कौतूहलको अततक जगाये रखे, पर यह शक्ति मोनोलॉगमे विशेष रूपसे अपेक्षित है। नाटकोमे अनेक पात्र बोलते हैं, इसलिए उनमे एकरसता आनेका उतना भय नही रहता, जितना मोनो-लॉगमे। मोनोलॉगको एकरसतासे बचानेके लिए कई बातोपर ध्यान देना पडता है।

पहली बात तो यह है कि कहानी इस तरह कही जाय कि श्रोताओंकी उत्सुकता सदा बनी रहे। कथाका विकास क्रमिक रूपमे हो, साथ ही उसकी जो मुख्य बात हो, उसे अततक रहस्यकी तरह छिपाया जाय। कथामे मुख्य रहस्यका उद्घाटन अतमे हो, तभी श्रोता उसे जाननेके लिए उत्सुक रहेंगे।

एकरसतासे बचनेका दूसरा उपाय यह है कि पात्रको जो कुछ बोलना हो, वह इस प्रकार लिखा जाय कि उसके बोलनेकी गति बदलती रहे। अगर एक ही लहजेमे, एक ही गतिसे कोई आधे घटेतक बोलता रहे, तो वह श्रोताओके मनको उबानेवाला सिद्ध होगा। इसलिए मोनोलॉगके विभिन्न अश भावनाओके अनुरूप स्थान-स्थानपर धीमी और तेज गतिसे पढने लायक होने चाहिएँ। साथ ही उनका ऐसा रहना आवश्यक है कि अभिनेता स्थान-स्थानपर हास, उच्छ्वास, क्रोध आदिके भावोको सरलता से व्यजित कर सके।

इस सबधमे एक बात और ध्यान देनेकी है कि मोनोलॉगकी उल्लिखित घटनाओके अनुरूप यथेष्ट एव उचित ध्वनि-प्रभाव भी दिये जायँ। यदि ट्रेनमे सबधित किसी घटनाका उल्लेख किया जा रहा हो, तो साथमे ट्रेनका ध्वनि-प्रभाव भी होना चाहिए। इससे घटनाएँ सजीव हो उठेगी और मोनो-लाग काफी प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा।

ध्वनि-प्रभावोके अतिरिक्त मोनोलॉगको प्रभावोत्पादक बनानेमे सगीतका भी बहुत अधिक हाथ है। भावनाओको व्यजित करनेवाले पृष्ठ-भूमि-सगीतसे मोनोलॉगमे प्रभावोत्पादकता लायी जा सकती है। स्थान-स्थानपर 'शान्ति'का भी उपयोग किया जा सकता है। ये सभी साधन रेडियो-नाटकके सभी प्रकारोके लिए आवश्यक है, पर मोनोलॉगमे कथनोप-कथनकी कमीकी पूर्तिके उद्देश्यसे इनपर विशेष ध्यान दिया जाता है।

हिंदीमे रेडियो-मोनोलॉग बहुत कम, नहीके बराबर लिखे गये है। यह क्षेत्र बिल्कुल खाली है। रेडियो-नाटक लिखनेके आकाक्षी कलाकार अपनी रचनाओ-द्वारा इसे समृद्ध कर सकते है।

संगीत-रूपक

आँल इंडिया रेडियोके विभिन्न स्टेशनोसे 'संगीत-रूपक' नामसे भी कुछ रचनाएँ प्रसारित की जाती हैं। इन संगीत-रूपकोंमें गीतोंकी प्रधानता होती है, जिन्हें एक-दो नैरेटर अपनी उक्तियोंसे संबद्ध कर देते हैं। एक उदाहरण-द्वारा संगीत-रूपकका स्वरूप-विधान समझा जा सकता है। 'शरद-यामिनी'-का एक अंश देखिए—

समवेत—(गीत) आओ, शरद-हासिनी आओ!
गगन-वासिनी, उतर धरापर
मंगल-कण बिखराओ!
जीवन-नभमें मेघ घिरे हैं
धरती है अकुलाती,
दसों दिशाएँ बनीं श्यामला,
रजनी घिर-घिर आती,
ज्योतिर्मयि शुभ शरद-शर्वरी,
ज्योति-किरण बरसाओ!
धरती यह हो रही पंकिला,
क्षुब्ध विकल सब प्राणी,
बुला रही है तुम्हें क्षितिजसे
जन-जनकी मृदु वाणी,
जीवनके कर्दमसे अभिनंद
शुभ्र कमल सरसाओ!
पुरुष-स्वर—गूँज उठी जन-जनकी वाणी,
गूँज उठे धरती औ अंबर,
शरद-यामिनी लगी उतरने
शुभ्र मेघके उज्ज्वल रथपर!

स्त्री-स्वर—काले-काले बादल पलमें बिखर गये,
उज्ज्वल-उज्ज्वल नभ-पथ क्षणमें निखर गये,
शरद-यामिनीका रथ नभसे उतर चला,
महाशून्यमें लगी तैरने ज्योति-कला!

पुरुष—(गीत)

शरदकी कुमारी चली आ रही है!
वसन शुभ्र झिलमिल पवन है उड़ाता,
विहँसता वदन चाँद-सा मुस्कुराता,
नयन खंजनो-से, हँसी काँस-सी है,
प्रभा देखकर है कुमुद-वन लजाता,
मचलती, थिरकती विभा-रश्मियोंपर
गगनकी दुलारी चली आ रही है!
लिये हाथमें धानकी मंजरी है,
जवा-फूल, शेफालिकासे भरी है,
रचित है वसनमें सुमन शुभ्र अगणित,
सुमन-शोभिता यह सुमन-अप्सरी है,
धराको नवल दान देने सुमनके,
सुमनकी सँवारी चली आ रही है!

स्त्री-स्वर— रथ इतना नीचे उतर गया,
शारदी आ गयी धरतीपर,
आनंद-मुग्ध हो रहा विश्व,
हो गये मुग्ध गिरि, तरु, निर्झर!

पुरुष-स्वर—शरद-यामिनी शरद-लक्ष्मी बन
जगमें अवतरित हो गयी!

स्त्री-स्वर—बरस पड़े जन-जनके करसे
अभिनन्दनके फूल चरणपर,

अभिनन्दनकी मधुमय ध्वनिसे,
गूंज उठे दिशि-दिशि औ अंबर !

समवेत—(गीत)

ज्योति-चरण शारद-शिखे,
जयति, जयति, जय हो !
धरतीके भाग्य जगे,
उतरी तू अंबरसे,
आशाएँ जाग उठीं,
सपने सब हरषे,
वरदे, तू वर दे यह,
जग ज्योतिर्मय हो !

इस प्रकार संगीत-रूपकोंमें गीतोंकी प्रधानता रहती है। नैरेटरके कथन-द्वारा ये गीत परस्पर जुड़े रहते हैं। कुछ रूपकोंमें नैरेटर गद्य या पद्यमें बोलते हैं। आजकल प्रचलित संगीत-रूपकका स्वरूप-विधान यही है।

अब मैं इस बातपर विचार करना चाहता हूँ कि इस स्वरूप-विधान और इसके नामकी सार्थकता क्या है। 'संगीत-रूपक' नाम 'रूपक'से भी अधिक भ्रामक है। जैसा हम देख चुके हैं, रूपकोंमें यथातथ्य घटनाओं, कार्यों एवं विषयोंका नाटकीकरण किया जाता है। संगीत-रूपकोंमें इस बातका नितांत अभाव रहता है। इनमें किसी भी विषयका यथातथ्य वर्णन नहीं रहता। जिस वास्तविकताकी माँग रूपकमें की जाती है, वह संगीत-रूपकमें नहीं मिलती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि संगीत-रूपकमें वास्तविकता नहीं रहती, वह असत्य होता है। संगीत-रूपकमें भी वास्तविकता रहती है, पर यह वास्तविकता तथ्योंकी नहीं, भावनाओं तथा अनुभूतियोंकी वास्तविकता होती है, और यह वास्तविकता तो नाटक, कहानी, उपन्यास, काव्य आदि सब स्वरूप-विधानोंकी अनिवार्यता है। अतः 'संगीत-रूपक'में आये 'रूपक' शब्दकी कोई सार्थकता नहीं ज्ञात होती। संभवतः 'संगीत-रूपक'को 'रूपक' इसलिए कहा जाता

है कि उसमे नैरेटर होते है, लेकिन जैसा कि हम पहले विचार कर चुके है, केवल नैरेटर या नैरेटरोके रहनेसे ही कोई रचना 'रूपक' नही हो जाती।

हाँ, कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती है, जिनमे 'संगीत-रूपक' अपने नामकी सार्थकता सिद्ध कर सकता है। यदि किसी संगीतज्ञ अथवा कविके जीवन एव कृतियोपर कोई रूपक लिखना हो, तो उसके गीतोमे जीवनकी यथातथ्य वास्तविकता चित्रित हो सकती है।

प्रश्न यह अवश्य उठता है कि जब 'संगीत-रूपक' नाम सार्थक नही है, तो उसे क्या कहा जाय? इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए हमे प्रचलित संगीत-रूपकोकी विषय-वस्तु एव प्रकारोपर विचार करना होगा। आजकल जो संगीत-रूपक लिखे जाते है, वे निम्नलिखित कोटियोमे आ सकते है –

(१) जो कल्पित कहानियोपर आधारित होते है,
(२) जो कवियो और संगीतज्ञोके जीवनपर आधारित होते है,
(३) जिनमे प्राकृतिक सौंदर्य चित्रित होता है, और
(४) जिनमे पर्याप्त नाटकीयता भी रहती है। एक विशेषता तो इन सबमे रहती ही है कि इनमे संगीतकी प्रधानता रहती है।

तो, पहली श्रेणीकी रचनाओको हम सरलतासे 'संगीत-कहानी' कह सकते है, और दूसरी श्रेणीकी रचनाओको 'संगीत-रूपक'। तीसरी श्रेणीकी रचनाएँ 'संगीत-चित्र' कही जा सकेगी, और चौथी श्रेणीकी रचनाएँ 'संगीत-नाटक'। इस प्रकार यदि रचनाओके स्वरूप-विधानका नामकरण किया जाय, तो इसमे वैज्ञानिकता आएगी। इन नामोके अर्थ भी स्वत स्पष्ट है। 'संगीत-कहानी'से लोग सरलतासे समझ सकेगे कि यह ऐसी कहानीके लिए है, जिसमे संगीतकी प्रधानता है, उसी प्रकार अन्य नाम भी सहज बोधगम्य है।

इन सब रचनाओके लिए 'रूपक'के प्रसगमे कही गयी बात दुहरायी जा सकती है कि इनका सुसगठित होना अनिवार्य है। ऐसा होनेसे ही ये श्रोताओपर एक निश्चित प्रभाव छोड सकेगी। आजकल बहुत-से लोग 'संगीत-

रूपक' देखनेको मिलते हैं, जिनके गीत विभिन्न परिस्थितियो एव वातावरणमे लिखे गये होते हैं, जिन्हे नैरेटरोकी उक्तियोसे परस्पर जोड दिया जाता है। ऐसी रचनाओके गीत बिखरे-बिखरे-से लगते हैं, और उनसे श्रोतापर एक निश्चित प्रभाव नही पड पाता। इसलिए सफल सगीत-रचनाओके लिए अनिवार्य है कि वे सुसबद्ध और सुसगठित हो।

ऐसी सगीत-रचनाओका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। इन नये स्वरूप-विधानोमे यत्र-तत्र गुंथे हुए छोटे-छोटे गीत लोगोका मनोरजन भी करेंगे और सगीतको लोकप्रिय भी बनानेमे समर्थ हो सकेंगे।

झलकियाँ

'झलकियाँ' भी रेडियोकी अपनी चीज हैं। स्वरूप-विधानकी दृष्टिसे इन्हें पाँच-छ छोटी-छोटी रेडियो-नाटिकाओंका समूह कह सकते हैं। ऑल इंडिया रेडियोके कुछ स्टेशनोंमें 'झलकियाँ', 'इन्द्रधनुष', 'लहर', 'रंग-तरंग' आदि नामसे जो आधे घंटेका कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है, उसके अंतर्गत पाँच-पाँच, छ-छ मिनटकी छोटी-छोटी नाटिकाएँ रहती हैं, बीच-बीचमें दो-चार पंक्तियोंके नैरेशनसे उन्हें परस्पर संबद्ध कर दिया जाता है। इन छोटी-छोटी नाटिकाओंमें एक-दो साधारण घटनाएँ रहती हैं, जिनके माध्यमसे जीवनकी कुछ झलकियाँ उपस्थित कर दी जाती हैं। उदाहरणके लिए, यदि किसी मध्यमवर्गीय परिवारकी झलकियाँ उपस्थित करनी हैं, तो उस परिवारमें घटनेवाली कुछ घटनाओंके आधार-पर पाँच-छ लघु-कहानियाँ बनाकर उनका नाटकीकरण कर देंगे। ये नाटिकाएँ परस्पर स्वतंत्र रहती हैं, पर संक्षिप्त नैरेशनके द्वारा इन्हें परस्पर एक सूत्रमें बाँध देते हैं। ध्यान देनेकी बात है कि 'झलकियाँ' साधारणतः मनोरंजनकी दृष्टिसे लिखी और प्रसारित की जाती हैं। फलतः मनोरंजकता उनकी सबसे बड़ी विशेषता होती है, उनमें जीवनके गंभीर नहीं, हल्के-हल्के पक्षोंका अंकन होता है।

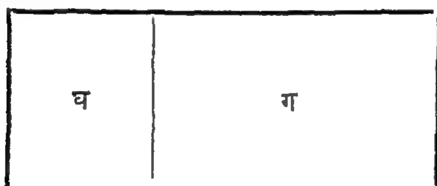
रेडियो-नाटककी जिन विशेषताओंका उल्लेख पहले हो चुका है, वे 'झलकियाँ'के लिए भी अनिवार्य हैं। इनकी विशेषता केवल इनकी संक्षिप्त रूपरेखा और मनोरंजकतामें है।

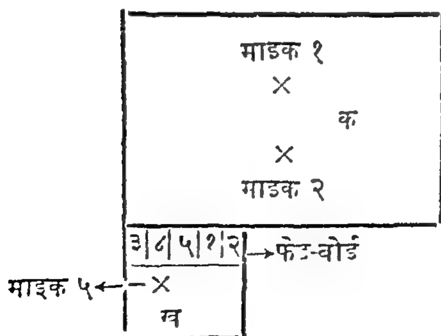
रेडियो-रंगमंच

जिन लोगोने केवल रगमच-नाटकोकी रगशाला ही देखी है, वे यदि एकाएक रेडियो-रगमच देखेगे, तो उन्हे बडी निराशा होगी। रगशालासे लोगोंके मनमे सामान्यत उस स्थानके ही दृश्य आते है, जहाँ रग-बिरगे पर्दे होते है, रग-बिरगी बत्तियोका प्रबध होता है, जिसके पीछे अभिनेताओ-का प्रसाधन-गृह या नेपथ्य (Green Room) होता है, और जिसके आगे दर्शकोके बैठनेकी व्यवस्था होती है। पर रेडियो-नाटकोकी रगशाला इससे बिलकुल भिन्न होती है। न वहाँ रग-बिरगे पर्दे होते है, न वहाँ कोई दर्शक ही होता है, न अभिनेताओंके लिए रगीन वस्त्राभूषण ही। वहाँ बिलकुल सादगी है, एक बडे-से सीधे-सादे कमरेमे, जिसे स्टूडियो कहते है, अभिनेता अपने दैनिक जीवनके साधारण कपडे पहनकर ही सम्राट् या भिखमगे बनते है। और, रेडियो-नाटकोंके दर्शक, जिन्हे श्रोता ही कहना उचित होगा, तो अपने-अपने घरोमें रेडियो-सेटके निकट बैठे नाटक सुनते रहते है। यह सचमुच आश्चर्यकी बात है कि नाटकका अभिनय एक स्थान-पर हो, और उससे आनद-लाभ करनेवाले विभिन्न दूरियोपर हो, पर ध्यान देनेपर यह सरलतासे कहा जा सकता है कि रगमच-नाटकोंके दर्शक अभि-नेताओंसे अपनेको जितना दूर पाते है, रेडियो-नाटकोंके श्रोता अभिनेताओ-से अपनेको उतना ही निकट। किसी अभिनेताकी हल्की-सी फुसफुसाहट भी श्रोताके कानोमे पहुँच जाती है, वह भी इतनी जल्दी कि प्रेक्षागृहके दर्शक भी रगमचके अभिनेताओकी आवाज उतनी जल्दी नही सुन पाते। रेडियो-नाटक बडे सीधे-सादे वातावरणमे, बडे सीधे-सादे ढगसे अभिनीत होते है, फिर भी उनमे अपेक्षित वातावरण एव प्रभावकी सृष्टि कैसे हो जाती है, इसे जाननेके लिए रेडियो-नाटकोकी प्रसरण-क्रियाका सामान्य परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा। हाँ, प्रसरण (broadcasting) को

टेकनीक-सबधी केवल उन्ही बातोपर यहाँ प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जाएगा, जो रेडियो-नाटककारके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सबसे पहले हम स्टूडियोको देखे। रेडियो-नाटक स्टूडियोमे ही प्रसारित किये जाते है। कभी एक ही स्टूडियोमे काम चल जाता है, कभी कई स्टूडियोका उपयोग करना पडता है। स्टूडियोसे नाटक किस प्रकार प्रसारित किये जाते है, इसे जाननेके लिए स्टूडियोके आकार-प्रकार, उसमे स्थित यत्र आदिका सामान्य ज्ञान अपेक्षित होगा। सभी स्टूडियोकी न एक निश्चित रूप-रेखा होती है, न सबमे समान सुविधाएँ ही प्राप्त होती है। जो स्टेशन जितने बडे और सुविधा-सम्पन्न होते है, उनमे नाटक-प्रसरणके उतने ही साधन रहते है। हमारा काम यहाँ एक सामान्य स्टूडियोके परिचयसे चल जाएगा। एक नक्शाके द्वारा हम इस स्टूडियोका परिचय सरलतामे प्राप्त कर सकते है।





नाटक प्रसारित करनेके लिए साधारणत एक बडा स्टूडियो सामने लाया जाता है। नक्शामें हम उसे क मान सकते है। उसकी बगलमे प्रस्तुत-

कर्त्ता (Producer) का छोटा-सा कमरा है—ख। कही-कही उद्घोषक (announcer) भी वहीसे बोलता है, कही-कही उसके लिए स्वतत्र कमरा भी होता है। क और ख के बीचमे आने-जानेका रास्ता नही होता, वहा एक बडा-सा शीशा लगा रहता है। प्रस्तुतकर्त्ता और अभिनेता एक-दूसरेको देख सकते हैं, पर साधारण ढगसे एक-दूसरेकी बाते नही सुन सकते, इसके लिए जिन यत्रोका सहारा लेना पडता है, उन्हे फेडर (fader) कहते हैं। फेडरोको हम माइक्रोफोनोके स्विच कह सकते है। कार्यक्रम प्रसारित करनेके लिए इन्हीके द्वारा माइकको ध्वनिग्राहक बनाया जाता है, अन्यथा वे निष्क्रिय अवस्थामे पडे रहते हैं। ये फेडर प्रस्तुतकर्त्ताकी टेबुलपर सामने फेड-बोर्डपर रहते हैं। इन फेडरोका सबध विभिन्न माइक्रोफोनो और स्टूडियोसे रहता है। जैसे, फेडर न० १ का सबध माइक्रोफोन न० १ से हैं, फेडर न० २ का माइक्रोफोन न० २ से, फेडर न० ३ का स्टूडियो ग से, फेडर न० ४ का स्टूडियो घ से और फेडर न० ५ का सबध माइक्रोफोन न० ५ से हे। प्रस्तुतकर्त्ता एक ही स्थानपर बैठा हुआ विभिन्न स्टूडियो और माइक्रोफोनोंसे सबध स्थापित कर सकता है। रिहर्सलके समय यदि उसे अभिनेताओसे कुछ कहना हुआ, तो फेडर न० ५ ऊपर उठाकर कह देगा और फेडर न० १ या २ उठाकर उनका उत्तर सुन लेगा। प्रसरणके समय ध्वनि-प्रभाव भी दूसरे स्टूडियो यानी स्टूडियो घ से दिये जाते हैं, पर प्रस्तुतकर्त्ता उन्हे फेडर न० ४ के द्वारा स्टूडियो क से प्रसारित नाटकसे सबद्ध कर देगा। इसी प्रकार यदि नाटकमे वाद्य सगीतकी आवश्यकता हुई, तो स्टूडियो ग मे प्रस्तुत वाद्य सगीतको फेडर न० ३ के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। इन फेडरोकी एक विशेषता यह भी है कि इन्हीके द्वारा ध्वनियोका सतुलन किया जाता है। फेडरके एक सिरेपर ध्वनि बहुत क्षीण सुनायी पडती है, दूसरे सिरेपर बहुत ज़ोरसे। आवश्यकतानुसार फेडरको कम या अधिक खोला जा सकता है, बिजली पखेके स्विचकी तरह्। उदाहरणके लिए, ट्रेनका ध्वनि-प्रभाव देनेके लिए स्टूडियो घ मे इन ध्वनि-प्रभावका एक रिकार्ड बजाया जा रहा है। नाटकमे यदि यह दिखलाना हुआ कि ट्रेन

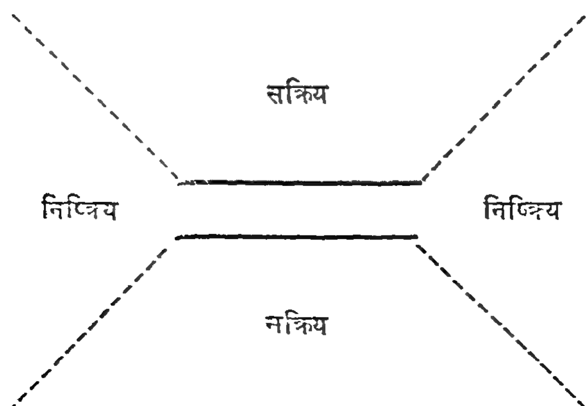
दूरसे क्रमश: निकट आ रही है, तो प्रस्तुतकर्त्ता ध्वनि-प्रभावके फेडरको धीरे-धीरे खोलता चला जाएगा, फलत: ट्रेनकी आवाज क्रमश: तेज होती जाएगी। ये बातें प्रस्तुतकर्त्तासे ही सबध रखती है, नाटक-लेखक अपनी रचनामें आवाज़की कमी-बेशीका उल्लेख भर कर देता है।

प्रसरणके सभी कार्य माइक्रोफोन-द्वारा ही होते हैं। इसी यन्त्रके द्वारा सभी ध्वनियाँ स्टूडियोसे प्रसारित की जाती है। अभिनेता इन्ही माइक्रोफोनोंमे बोलते है, जैसे ये ही उनके श्रोताओंके कान हो। आवाज जैसे ही माइक्रोफोनको छूती है, वह विद्युत्-तरगो (electrical waves) में परिवर्त्तित हो जाती है। ये विद्युत्-तरगे तारके सहारे ट्रासमीटर तक भेजी जाती है। ट्रासमीटर स्टूडियोसे कुछ ही मीलकी दूरीपर रहते हैं। स्टूडियोसे ट्रासमीटर तक पहुँचनेमे आवाज कमज़ोर न हो जाय, न उसमे कोई विकृति ही आ जाय, इसपर पूरा ध्यान रखा जाता है। ट्रासमीटर तक पहुँचने पर ये विद्युत्-तरगे बेतार-तरगो या रेडियो-तरगो (electromagnetic waves) मे परिवर्त्तित हो जाती है। ट्रासमीटर इन रेडियो-तरगोको ईथरके द्वारा बडी तीव्र गतिसे भेजता है। हमारा रेडियो-रिसिविंग सेट इन्हे ग्रहण करता है, और फिर कई प्रक्रियाओंके बाद हमारे रेडियो-सेटका लाउडस्पीकर इन रेडियो-तरगोको ध्वनि-तरगो (sound waves) मे पुन: परिवर्त्तित कर देता है, तभी हम स्टूडियोसे प्रसारित ध्वनियोको सुन पाते है।

अभी ऊपर कहा गया है कि रगमच-नाटकके दर्शक जितनी देरमें अभिनेताओंकी आवाज़ सुनते है, उससे पहले ही कोसो दूर बैठा हुआ रेडियो-नाटकका श्रोता अपने अभिनेताओंकी आवाज़ सुन लेता है। ऐसा इसलिए होता है कि रेडियो-तरगोंकी गति बहुत ही तेज़ होती है। सामान्य ध्वनि लगभग १२०० फीट प्रति सेकेंडकी गतिसे चलती है, पर रेडियो-तरगोंकी गतिका वेग है—१८६००० मील प्रति सेकेंड अथवा ३००००००००० मीटर प्रति सेकेंड। ध्वनि-तरग और रेडियो-तरगकी गतिका अन्तर एक उदाहरण-द्वारा बडी सरलतासे समझा जा सकता है। एक व्यक्ति यदि किसी स्थानो

बोलता है, तो उसकी आवाज पृथ्वीका चक्कर काटकर फिर उस मनुष्यके पास आनेमे कम-से-कम ४० घटे लेगी, जबकि रेडियो-तरग एक सेकेडमे पृथ्वीके साढे सात चक्कर काट लेती है। यही कारण है कि एक स्टूडियोकी प्रसारित ध्वनियाँ दूर-दूर देशोमे तत्क्षण ही सुनायी पड जाती है। जैसे ही अभिनेताकी आवाज स्टूडियोके माइक्रोफोनको छूती है, ठीक उसी क्षण हम उसे अपने रेडियो-सेटपर सुनते हैं। यह सोचकर रेडियो-अभिनेता अनुभव कर सकता है कि वह अपने श्रोताओके कितना निकट है।

माइक्रोफोन कई प्रकारके होते हैं। एक गोलाकार (Omni-directional) होता है, जो सभी दिशाओकी ध्वनियोको समान रूपसे ग्रहण करता है। एक माइक्रोफोन एक-मुखी (Clock-face) होता है, जो केवल एक ही दिशाकी ध्वनियोको ग्रहण कर सकता है, और एक माइक्रोफोन द्विमुखी (Bi-directional) होता है, जो दो विभिन्न दिशाओकी ध्वनियोको प्रत्यक्ष रूपसे ग्रहण करता है। नाटक-प्रसरणके लिए सामान्यत इस द्विमुखी माइकका ही व्यवहार किया जाता है। यो होता तो यह चतुर्मुखी है, पर इसके केवल दो ही पक्ष सक्रिय एव प्रभाव-ग्राहक होते है, अन्य दो पक्ष निष्क्रिय होते हैं। सक्रिय पक्ष चौडे होते है, और निष्क्रिय पक्ष पतले। ऊपरसे देखनेपर इसका नक्शा इस प्रकार होगा।



इस माइक्रोफोनकी अपनी विशेषताएँ होती हैं। यदि कोई व्यक्ति निष्क्रिय पक्षकी तरफ बोलता है, तो उसकी आवाज बहुत क्षीण सुनायी पड़ती है, क्योंकि सक्रिय पक्ष उस आवाजको प्रत्यक्ष रूपमे ग्रहण नहीं करता। फलत पात्रोके प्रवेश और प्रस्थान सूचित करनेमे इससे बडी सहायता मिलती है। यदि कोई व्यक्ति निष्क्रिय पक्षकी ओरसे बोलता हुआ सक्रिय पक्षकी ओर चला आये, तो ज्ञात होगा, जैसे वह कुछ गजकी दूरीसे क्रमश निकट आ गया है। इसी प्रकार प्रस्थान सूचित करनेके लिए अभिनेता सक्रिय पक्षकी ओरसे बोलते हुए निष्क्रिय पक्षकी ओर चले जाते हैं। निष्क्रिय पक्षकी ओर जोरसे बोलकर यह भी सूचित किया जाता है कि कोई पात्र बद दरवाजेकी दूसरी तरफसे बोल रहा है। दरवाजा खुलनेका ध्वनि-प्रभाव मिलनेके बाद वह पात्र सक्रिय पक्षकी ओर चला जाता है। इससे ज्ञात होगा कि वह कमरेमे आ गया। द्विमुखी माइक्रोफोनकी एक उपयोगिता यह भी है कि अभिनेता नाटककी प्रति (Script) निष्क्रिय पक्षकी ओर रखकर बोल सकते हैं, जिससे कागजकी खडखडाहट बाहर न सुनायी पडने पाये।

दूरीकी व्यजना रेडियो-नाटकमे बडी सरलतासे होती है। यह इस बातपर निर्भर है कि अभिनेता और माइकके बीचकी दूरी कितनी है। जैसे, यदि यह दिखलाना हुआ कि किसी नदी या निर्झरके दो तटोपर खडे हुए दो व्यक्ति आपसमे बाते कर रहे है, तो एक माइकके निकट रहेगा, दूसरा उससे कुछ दूर। कौन अभिनेता कब माइकके किस कोणपर, और कितनी दूरीसे बोले, इन सभी बातोका निश्चय नाट्य-निर्देशक रिहर्सलके समय कर देता है।

नाटक-प्रसरणके समय आवश्यकतानुसार एक या एकसे अधिक माइक्रोफोनोको काममे लाया जाता है। सामान्य स्टूडियोमे दो माइक्रोफोन रहते हैं, एकपर प्रमुख पात्र या नैरेटर बोलते है, दूसरेपर अन्यान्य पात्र। माइक्रोफोन अपने स्थानपर स्थिर रहते है, अभिनेता ही आवश्यकतानुसार

अपनी दूरी और कोणमे परिवर्तन कर विभिन्न प्रभावोकी सृष्टि किया करते हैं।

घडीकी चर्चाके बिना स्टूडियोका परिचय अपूर्ण ही रहेगा। दीवारकी ढडी, पर नि शब्द घडी एक-एक सेकेडकी गिनती करती हुई चलती रहती है, और प्रस्तुतकर्त्ता एव अभिनेताओको बतलाती रहती है कि उन्हे अपना अभिनय एक निश्चित अवधिमे ही समाप्त कर देना है।

'ध्वनि-प्रभाव' के प्रसगमे हम पीछे देख आये है कि ये रेडियो-नाटकके बडे प्रभावशाली साधन है। इनके-द्वारा कुछ ही क्षणोमे अपेक्षित वातावरण-की सृष्टि हो जाती है, आफिस, सडक, बाज़ार, नदी-तट आदिकी व्यजना हो जाती है। रेडियो-नाटकमे दिलचस्पी रखनेवाले व्यक्तियोंके मनमे यह जिज्ञासा होती है कि ध्वनि-प्रभाव किस प्रकार उत्पन्न किये जाते हैं। जैसा हम अभी देख चुके है, ध्वनि-प्रभावोके लिए एक स्वतत्र स्टूडियोका व्यवहार किया जाता है। ध्वनि-प्रभाव दो प्रकारसे दिये जाते हैं—(१) स्टूडियोमे ही उत्पन्न करके, और (२) रिकार्डो-द्वारा। ध्वनि-प्रभावके स्टूडियोमे कुछ वस्तुएँ पहलेसे ही रखी रहती है, जिनकी आवश्यकता ध्वनि-प्रभाव देनेके लिए होती है। ये ध्वनि-प्रभाव जिस प्रकार उत्पन्न किये जाते है, वह बहुत लोगोंके लिए आश्चर्यका विषय होगा। उदाहरणके लिए, जब स्टूडियोमे कागज़पर बालू गिराया जाता है, तब नाटक सुनने-वाले समझते है कि वर्षा हो रही है। सब प्रकारके ध्वनि-प्रभावोको स्टू-डियोमे उत्पन्न कर सकना सभव नही होता, फलत अधिकाश ध्वनियोंके रिकार्ड रखे जाते है, जो अपेक्षित स्थलोपर बजा दिये जाते है। रिकार्ड बजानेके यन्त्र, जिन्हे ग्रामोफोन टर्नटेबुल (gramophone turntables) कहते है, ध्वनि-नियोजककी बगलमे ही रहते है। हाँ, यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि जब नाटक एक स्टूडियोसे प्रसारित किया जाता है और ध्वनि-प्रभाव दूसरे स्टूडियोसे दिये जाते है, तब नाटकके उचित स्थलोपर उचित ध्वनि-प्रभाव कैसे दिये जाते है? बात यह होती है कि ध्वनि-नियोजकके हाथमे भी नाटककी एक प्रति रहती है, जिसमे अकित किया रहता है कि

किन-किन स्थलोपर कौन-कौन-से ध्वनि-प्रभाव देने है। ध्वनि-सयोजक हेड-फोनपर नाटक सुनता रहता है। साथ ही प्रस्तुतकर्त्ताकी ओरसे उसे नाटकके अकित स्थलोपर प्रकाश-सकेत मिलते रहते है। इसीसे वह उचित स्थलोपर निर्दिष्ट ध्वनि-प्रभाव देनेमे भूल नही करता। ध्वनि-सयोजकका काम बडी सतर्कता और कुशलताका है। थोडी-सी असावधानीमे भी हवाई जहाजके स्थानपर मोटरकी आवाज सुनायी पड सकती है अथवा पात्रकी 'आह' पहले सुनाई पडे और पिस्तौलकी आवाज बादमे।

प्रोड्यूसरके कट्रोल-बोर्डपर एक यत्र और भी होता है, जिसके-द्वारा वह अभिनेताओकी आवाजमे परिवर्त्तन कर सकता है। इसे फिल्टर (Filter) कहते है। इसके-द्वारा आवाजको तीखा, कर्कश, गभीर, खोखला आदि किया जा सकता है। उदाहरणके लिए, 'अभिशप्त' नाटकमे यह दिखलाना था कि अश्वत्थामा आजसे कई हजार वर्ष पहलेका मनुष्य है—आजके मनुष्योसे भिन्न। फलत उसकी आवाज फिल्टरके द्वारा इस प्रकार बदल दी गयी कि उसके विराट् व्यक्तित्वका आभास श्रोताओको मिल सके।

स्टूडियोमे पर्दे नही होते, उनकी आवश्यकता ही नही होती, फिर भी रेडियो-नाटकमे दृश्य-परिवर्त्तन किये जाते है, इसका उल्लेख हम पीछे कर आये है। दृश्य-परिवर्त्तन वाद्य सगीत अथवा क्षणिक शातिसे तो किये ही जाते है, स्वरोदय (Fade in),[1] स्वर-विलयन (Fade out)[2] और स्वर-परिवर्त्तन (Cross Fade)[3] से भी किये जाते है।

---

१ Fade In—A scene 'Fades In' Opening line, or musical or sound effect increases gradually in volume until at normal level

२ Fade Out—A scene 'Fades Out' Closing line, or musical or sound effect gradually decreases in volume

३ Cross Fade Fading out one set of sound, music or dialogue, and simultaneously fading in another

—Glossary of Radio Terms in 'One Hundred Non-Royalty Radio Plays'

जब कोई ध्वनि मद-मद सुनायी पडती हुई जोरसे सुनायी पडने लगती है, तो उसे स्वरोदय कहते है, और इसकी विपरीत स्थितिको स्वर-विलयन। यह फेडरके द्वारा किया जाता है। अभिनेताओकी गतिके द्वारा भी स्वरोदय तथा स्वर-विलयन होते है। अभिनेता जब माइकके निष्क्रिय पक्षकी ओर-से सक्रिय पक्षकी ओर अथवा दूरसे माइकके निकट आता है, तब स्वरोदय होता है और इसके ठीक विपरीत स्वर-विलयन। इनके उदाहरण पहले दिये जा चुके है। एक प्रकारकी ध्वनियोके समाप्त होते-होते दूसरे प्रकारकी ध्वनियोका स्पष्ट सुनायी पडने लगना स्वर-परिवर्त्तन कहलाता है। यह भी दृश्य-परिवर्त्तनका एक प्रभावशाली साधन है। इसका एक उदाहरण पीछे 'अबपाली'के रेडियो-रूपातरके प्रसगमे (पृ० ९५-९६) मे दिया जा चुका है। दूसरा उदाहरण पृष्ठ ५८ मे देखा जा सकता है। परिवर्त्तित होने-वाली दोनो ध्वनियाँ जितना ही एक-दूसरीसे भिन्न प्रकारकी होती है, उनसे उतने ही शक्तिशाली प्रभावकी सृष्टि होती है। अभी जिस उदाहरणका सकेत किया गया है, उसमे इस विशेषतापर ध्यान दिया जा सकता है।

फिल्मोमे व्यवहृत एक साधन सयुक्त दृश्यक्रम (montage)[1]का भी रेडियो-नाटकमे व्यवहार किया जाता है।[2] सयुक्त दृश्यक्रममे छोटे-

---

१. Montage—A swift succession of individual voices, or of very brief scenes, or of musical and sound effects or of any combination of the preceding Montage is used to widen the scope of action by showing parallel events, to show time lapse through a swift succession of events and to achieve sharp contrasts —Glossary of Radio Terms in 'One Hundred Non-Royalty Radio Plays'

२ This is not in the least a *circumstance peculiar to the cinema*, but is a phenomenon invariably met with in all cases where we have to deal with juxtaposition of two facts, two phenomena, two objects.

—'The Film Sense'

छोटे अनेक दृश्यों अथवा ध्वनियोंका इस प्रकार संयोजन किया जाता है कि संयुक्त रूपमें उनसे एक नये प्रभावकी सृष्टि हो। सर्जी आइसटीनका तो कहना है कि इस साधनका उपयोग सभी क्षेत्रोंमें किया जाता है। रेडियो-नाटकमें संयुक्त दृश्यक्रमसे अनेक प्रकारके प्रभाव उत्पन्न किये जाते हैं। इनमें यह दिखलाया जाता है कि घटना विशेषकी समानान्तर प्रतिक्रिया किस प्रकार होती है। उदाहरणके लिए, एक महान् व्यक्तिके निधनकी समाजके विभिन्न क्षेत्रोंमें क्या-क्या प्रतिक्रिया होती है, यह संयुक्त दृश्यक्रम-द्वारा दिख-लाया जा सकता है। इसमें पात्रविशेषकी मानसिक उद्विग्नताका प्रभावशाली चित्र अंकित किया जा सकता है। एक उदाहरण इस प्रकारका हो सकता है—

स्वर १—जगह खाली नहीं है।
स्वर २—शादी कर लो विमल।
माँ—अब मेरे दिन लौटेंगे।
स्वर ३—बधाई है विमल, तुम परीक्षा पास कर गये।
स्वर १—जगह खाली नहीं है।
स्वर २—शादी कर लो विमल।
माँ—अब मेरे दिन लौटेंगे।
स्वर ३—कितने भाग्यवान हो विमल। इतना अच्छा वराग मिला है तुम्हें।
स्वर १—जगह खाली नहीं है।
स्वर २—शादी कर लो विमल।
माँ—अब मेरे दिन लौटेंगे।
स्वर ३—बधाई है विमल। मिहनतका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। मिहनतका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा।
विमल—(तेज आवाजमें) झूठ। झूठ। झूठ कह रहे हो तुम। (सँभलकर) उफ। यह क्या कर रहा हूँ मैं। कोई सुनेगा, तो क्या कहेगा। (हल्की हँसी)

संयुक्त दृश्यक्रम प्रस्तुत करनेके लिए स्वरोदय, संगीत आदिका सहारा लिया जाता है।

टेलीविज़न-नाटक : रेडियो-नाटक

रेडियो-नाटककी टेकनीकका विवेचन करते समय हमने यह अच्छी तरह देख लिया कि सामान्य नाटकोसे रेडियो-नाटककी कला बहुत भिन्न है। वैज्ञानिक प्रगतिके साथ-साथ नाट्य-स्वरूपोमे परिवर्त्तन होते जाते है। रगमच-नाटक, फिल्म-नाटक और रेडियो-नाटक हमारे सामने है, इनकी अगली कडीमे आ रहा है टेलीविजन-नाटक। टेलीविजनका आविष्कार हो चुका हे, और उसके माध्यमसे ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी, इटली, रूस, डेनमार्क आदि अनेक देशोमे नाटक प्रसारित किये जाने लगे है। हमारे यहाँ अभी टेलीविजन नही आया है, पर आएगा अवश्य, इतना निश्चित है, और, लोगोके मनमे स्वाभाविक शका होती हे कि क्या टेलीविजन-नाटक रेडियो-नाटकको अपदस्थ कर देगा ? ऐसी शका वहाँके लोगोके मनमे भी होती है, जहाँ टेलीविजनका उपयोग होने लगा है। इगलैंडके श्री फेलिक्स फेल्टन लिखते है —

'One of these days, radio is going to find that its glasses have been mended by television When that happens, will it survive, or, like the old mail-coach, will it be put affectionately but finally away ? If it disappears, I believe that something, perhaps even a great deal, will be lost But whichever the answer is to be, the coach is still on the road and it looks as if it still has a good way to travel'

हमलोगोके लिए टेलीविज़न अभी दूरकी चीज़ है, इस तरहकी शका-आशकाओसे कोई लाभ नही दीखता।

कुछ लोगोंके मनमे यह भी जिज्ञासा होती है कि टेलीविजन—नाटकका स्वरूप-विधान कैसा होगा ? इस सबधमे भी कुछ कहना असामयिक-जैसा लगता है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता हे कि टेलीविजन-नाटककी अपनी सीमाएँ और अपनी विशेषताएँ होगी। वह रेडियो-नाटक-की तरह मात्र श्रव्य न रहकर, दृश्य भी हो जाएगा। रेडियो-नाटककी तरह वह काल और स्थानके बधनोंसे मुक्त नही रह जाएगा, उसमें सकलन-त्रय पर ध्यान देनेकी आवश्यकता पड जाएगी। टेलीविजन-नाटकमें दृश्य, वस्त्राभूषण, पात्रोंके अग-सचालन, भाव-भगिमा आदिका भी उप-योग करना पडेगा। नाटककारकी दृष्टिसे टेलीविजन-नाटककी कला रेडियो-नाटकके निकट न होकर, फिल्म-नाटकके निकट होगी। उनका प्रभाव लघु-रूप-रगमचके समान किन्तु अधिक चलचित्रात्मक होगा, क्योंकि टेलीविजनका पर्दा चलचित्रसे काफी छोटा और सपाट होता है। वास्तवमें टेलीविज्नकी कला कैमरा और माइक्रोफोनकी कला होगी। उसका स्वरूप-विधान कैसा होगा, यह अभी निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता। बी० बी० सी०मे भी अभी प्रयोग ही हो रहे हैं। वहाके अधि-कारी श्री भाल गिलगुडने स्वय लिखा है—'It may well be that, with the passing of time and as the result of vigorous and imaginative experiment, indigenous form of piece for television may be evolved, a form that will approximate far more nearly in lay out to a film script than to that of play for sound broad-casting To date, that form has not evolved and I would hesitate to say that even the embryo of such a form is in existence If I am asked to give practical advice to the writer who is interested in television, I think that I could do no more than to urge him to buy a set and watch results'

तात्पर्य यह कि वहाँ भी टेलीविजन-नाटककी कला अभी प्रयोगावस्था-मे ही है। आशा की जा सकती है कि जबतक हमलोगोके यहाँ टेलीविजन आएगा, तबतक टेलीविजन-नाटककी कला बहुत कुछ निखरेगी, और बी० बी० सी० के अनुभवोसे हम लाभ उठा सकेगे।

अभी तो हमे रेडियो-नाटककी सभावनाओपर ही ध्यान देना है। हमारे यहां रेडियो-नाटकके प्रारभ हुए अभी बीस वर्ष भी नही हुए। पहला नाटक १९३६ मे आल इडिया रेडियोके दिल्ली स्टेशनसे प्रसारित हुआ था। वह नाटक भी वास्तवमे रगमचके लिए लिखे गये एक बँगला-नाटकका रूपान्तर था। अभी भी केवल रेडियोको ध्यानमे रखकर हमारे यहाँ कम ही नाटक लिखे जाते हैं। लब्धप्रतिष्ठ नाटककारोंके सबधमे भी यह बात कही जा सकती है कि केवल रेडियोके लिए कम ही लोग लिखते है। फलत ऐसे रेडियो-नाटक, जिनमे रेडियो-टेकनीककी सभावनाओका अधिकाधिक उपयोग किया जाय, कम ही मिलते है। आल इडिया रेडियोके एक अधिकारी श्रीकृष्ण शुक्लने सत्य ही कहा है—'A completely radiogenic play is rare We have broadcast few plays which were written especially for the medium Most plays, however, suffer from poor craftsmanship Their structure needs visual props The dialogue lacks the rhythms and modulations of the natural voice It belongs to the printed page and is not speech for an actor's tongue'

इससे सरलताने समझा जा सकता है कि हमारे यहाँ रेडियो-नाटककी कलापर कम ध्यान दिया गया है, और इसकी सभावनाओका कम उपयोग हुआ है। यह क्षेत्र रिक्त है, और इसमे काम करनेवालोंके लिए भविष्य आशामय है। जबतक टेलीविजन नहीं आता, तबतक उसकी चिंता किये बिना रेडियो-नाटककी कलापर ही ध्यान देना उचित है।

परिशिष्ट

संघर्ष

(वाद्य सगीतसे दृश्य प्रारभ)

(छेनी और हथौडीसे मूर्त्ति गढनेकी 'टट्-टट्' आवाज)

पंकज (धीरे-धीरे)

प्रस्तरमे जीवन जागेगा !
मेरी साधना न हार कभी भी मानेगी !
मै अपने हाथोमे गढ दूंगा नई मूर्त्ति !
पत्थर जीवित जाग्रत बनकर मुस्काएगा !
इसका अतर मचलेगा,
आँखें चमकेगी,
मुखकी अकित रेखाएं
अपने मौन स्वरोमे गाएँगी !
मेरी साधना, न ठहर तनिक,
तू चलती जा !

(मूर्त्ति गढनेकी आवाज)

पंकज

मै अपने आघातोंसे
प्रतिपल जगा रहा हू नयी ज्योति,
ससार तनिक जिसकी छायामे मुस्काए !

(मूर्त्ति गढनेकी आवाज)

पंकज

यह निर्जनताका राज्य,
यहा कोई न ओर ।
जगके कोलाहल, सघर्षसे दूर,

यहाँ है अभय शान्ति ।
है शाति भग होती
मेरी छेनीकी 'खट्-खट्'से ही, बस ।
इस निर्जनतामे जाग रहा मै ही केवल,
सोये पत्थरको जगा रहा ।
मै कलाकार हूँ, शिल्पी हूँ ।

पकजका मन

तुम कलाकार ही नही,
नही शिल्पी केवल,
तुम रक्त-मासके पुतले भी, मानव भी हो !

पंकज

यह कैसी ध्वनि ?
सुनता हूँ क्या ?

मन

तुम कलाकार ही नही,
नही शिल्पी केवल,
मानव भी हो ।

ंकज

तुम कौन ?
कहाँसे बोल रहे ?
मै तुम्हे देखता यहाँ नही,
लेकिन आवाज़ सुन रहा हूँ ।

मन

मै तो तुमसे
कुछ कहता रहता हूँ सदैव,
जिसको तुम सुनकर भी
न कभी हो सुन पाते मेरे पकज ।

पंकज

पंकज ?
संबोधित करते हो मुझको 'पंकज' कहकर !

मन

आश्चर्यचकित क्यों होते हो ?
मैं तुमसे परिचित हूँ,
तुमको पहचान रहा,
है ज्ञात मुझे आख्यान तुम्हारे जीवनके,
हरएक तुम्हारी धड़कन
मेरी धड़कन है !

पंकज

सम्मुख आओ,
मैं भी तुमको पहचानूं तो !

मन (हल्की हँसी)
पहचानोगे ?
आश्चर्य यही,
मुझको तुम अबतक भी
न तनिक पहचान सके।

पंकज

मैं समझ नहीं पाता,
तुम क्या यह कहते हो ?

मन

जबसे तुमने देखा प्रकाश इस धरतीका,
जबसे चंचल सांसें
गिनने लग गयीं ज़िन्दगीकी घड़ियाँ,
मैं तबसे ही तो संग तुम्हारे रहता हूँ !

पकज

तुम सग हमेशा रहते हो ?

मन

हाँ, सग हमेशा रहता हूँ ।
तुम भी हो उतना निकट नही अपने मनके,
जितना मैं निकट तुम्हारे
प्रतिपल रहता हूँ ।

पकज

तुम कौन ?
क्यो नही मेरे सम्मुख आते हो ?

मन

सम्मुख क्या आऊँ पकज !
मैं तो सदा तुम्हारे मनमे हूँ,
मैं सदा तुम्हारे अतरसे बोला करता ।

पकज

क्या कहने आये हो मुझसे ?
इस समय ? यहाँ ?

मन

मैं कहने आया हूँ पकज,
तुम कलाकार ही नही,
नही शिल्पी केवल,
तुम रक्त-मासके पुतले भी, मानव भी हो !

पकज

तात्पर्य तुम्हारे कहनेका ?

मन

तात्पर्य स्वय सोचो, समझो ।

पंकज

अवकाश नहीं मुझको इतना,
उलझूं तुमसे ।
अवकाश नहीं मुझको इतना,
मैं तथ्यहीन तात्पर्य तुम्हारा
समझूं, सोचूं यों रुककर ।
तुमने अपनी बातोंमें
उलझाकर मुझको,
भावना भंग कर दी मेरी !
ये हाथ रुक गये हैं मेरे,
छेनी है नीचे गिरी हुई !
मेरे सम्मुख यह मूर्त्ति अधूरी खड़ी-खड़ी
सतृष्ण नयनसे ताक रही,
है मांग रही जीवन मुझसे !
मैं कलाकार हूँ, शिल्पी हूँ,
भर दूंगा इसमें नये प्राण, चेतना नयी !

(मूर्त्ति गढनेकी आवाज़ शुरू होती है, फिर शीघ्र ही बन्द हो जाती है।)

मन

मन पागल हो पंकज,
कुछ मेरी बात सुनो !

पंकज

तुम क्यों अजान
मुझको यों करने आये हो ?

मन

मैं तुम्हें सत्य दिखलाने आया जीवनका !

पंकज

मैं देख रहा हूँ

जीवनके सत्योको
इन्ही मूर्त्तियोमे ।

मन

पाषाणोमे जीवनका सत्य नही मिलता,
सत्योके फूल खिला करते है धरतीपर ।
पाषाणोसे तुमको
न उलझने दूंगा अब।
मै तुम्हें खीचकर
जीवनकी धरतीपर लाने आया हूँ ।

पंकज

मै कहता हूँ,
मुझको जाना है कही नही ।
मै कलाकार साधना-निरत
कर रहा अभी मै नयी सृष्टि ।

मन

तुम भ्रममे हो ।
तुममे है इतनी शक्ति नही,
तुम देख सको
जीवनके निष्ठुर सत्योको ।
सत्योको अपनी आँखोसे ओझल करके
भ्रम-सृष्टि कर रहे हो प्रतिपल ।
भ्रमकी दुनियामे
तुम्हे नही रहने दूंगा,
देखना तुम्हे होगा जीवनका कठिन सत्य ।

पकज

ऐसी असत्य बाते क्यो करते हो ?
बोलो,

मैं कलाकार,
जीवनके सत्योंका द्रष्टा।
मैं देख रहा हूँ उन्हें सतत,
इसलिए कि उनको जगको भी दिखला पाऊँ,
इसलिए कि
प्रमुदित हो पाये संसार
कलाकृतियोंमें उनका बिंब देख।

मन

तुम चाह रहे हो
जगतीको प्रमुदित करना?

पंकज

सच कहते हो,
मेरी कामना यही है,
जग यह हँस पाये।
मेरी साधना सफल होगी,
जब मेरी कला-सृष्टियोंमें
जग पाएगा उल्लास-हास।

मन

इन बातोंपर
मुझको विश्वास नहीं होता।
कामना तुम्हारी होती यदि,
जगतीको सुखी बनानेकी,
पहले तुम सुखी बनाते
अपनी पत्नीको, माँको, अपने नन्हे शिशु को।

पंकज

क्या कहते हो?

मन

मैं सत्य कह रहा हूँ पकज ।
तुम जीवनके सत्योसे आखे फेर रहे ।
तुम कहते हो,
तुम निर्मित करते हो अनुपम मूर्त्तिया नयी,
मैं कहता हूँ,
मूर्त्तियाँ नही,
भ्रष्ट-सृष्टि तुम्हारी है केवल ।
तुम देख रहे,
अपनी आँखोंके सम्मुख नित,
नन्हा मोहन बीमार पडा है शय्यापर,
पत्नी बेचैन हो रही हे ।

(करुण सगीतके साथ एक स्मृति-दृश्य प्रारभ होता है)

मोहन—माँ ! माँ !

बेला—क्या है बेटा ? प्यास लगी है क्या ?

मोहन—हाँ माँ, पानी दे ।

बेला—पहले दवा पी ले बेटा, फिर पानी पीना ।

मोहन—नही माँ, मैं यह दवा नही पीऊँगा, बडी कडवी लगती है ।

बेला—दवा पीएगा, तभी तो जल्दी अच्छा हो जायगा ।

मोहन—तू रोज यही कहती है, पर मैं अच्छा नही होता । बाहर कब खेलने जाऊँगा माँ ? शाति और रामू रोज खेलते है ।

बेला—तुम भी खेलने जाओगे मेरे लाल ! पहले अच्छा तो हो जाओ ।

मोहन—मैं कब अच्छा होऊँगा माँ ?

बेला—अब दो-चार दिनमे ही अच्छे हो जाओगे ।

मोहन—तब तुम मुझे खानेको दोगी न ?

बेला—हाँ बेटा, मैं तुम्हारे लिए बडी अच्छी-अच्छी चीजे बनाऊँगी ।

मोहन---मैं सदेश खाऊँगा माँ, रसगुल्ले भी।

बेला---मैं तुम्हे सब कुछ दूँगी मोहन!

मोहन---तू मुझे जल्दी अच्छा कर दे माँ! बाबूजीसे कहकर कोई अच्छी दवा मँगा देना।

बेला---बाबूजी! (साँस खींचकर) बाबूजीको फुरसत नही रहती बेटा! वे हमेशा अपने काममे लगे रहते है।

मोहन---मेरे लिए वे काम छोडकर जरूर दवा ला देंगे माँ!

बेला---मोहन बेटा, उनके पास पैसे भी तो कम है!

मोहन---इससे क्या हुआ माँ! तू बहाना करती है। मैं कहूँगा तो, मेरे लिए वे जरूर दवा ला देंगे।

बेला---देख, वे आ ही रहे है।

मोहन---कहाँ है माँ?

बेला---आ ही गये। देखिए न, मोहन कबसे आपको खोज रहा है। आपको तो अपनी मूर्त्तियोंसे छुट्टी नही मिलती।

पकज (निकट आता हुआ)---क्या करूँ, थोडा-सा काम बाकी रह गया था, सोचा, पूरा ही कर लूँ। मोहनकी तबीयत कैसी है?

बेला---आपको इसकी चिंता थोडे ही है?

पकज---चिंता क्यों नही है? लेकिन काममे इस तरह उलझ जाता हूँ कि कुछ याद ही नही रहता। और, मूर्त्तियाँ बेकार तो नही बना रहा हूँ, उनसे पैसे भी तो मिलेगे।

बेला---पैसे क्या खाक मिलेगे! मूर्त्तियोंके प्रेमी कितने है?

पकज---है क्यों नही? दुनियामे अनेक कला-पारखी है।

बेला---साल दो सालमे कोई दो मूर्त्तियाँ खरीद ही लेगा, तो क्या इसीसे जिन्दगी चलेगी? मैं कबसे कहती हूँ, कोई दूसरा काम कर लो।

पकज---नही बेला, मुझसे दूसरा काम न होगा।

मोहन---बाबूजी!

पंकज—क्या है बेटा ?

मोहन—मुझे जल्दी अच्छा कर दीजिए बाबूजी ! मैं खेलने जाऊँगा !

पंकज—तू अच्छा हो जाएगा मोहन !

मोहन—आपने यह बड़ी कड़वी दवा ला दी है, मैं इसे नहीं पीऊँगा। आप कोई अच्छी दवा ला दीजिए।

पंकज—अच्छी दवा ? ला दूंगा बेटा ! तू जल्दी अच्छा हो जाएगा !

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

मन (जोरकी हँसी)

तुम कलाकार हो, शिल्पी हो !
तुम चाह रहे
उल्लास-हाससे भर देना इस जगतीको।
लेकिन अपने नन्हे शिशु,
अपनी पत्नीको
तुम तनिक न प्रमुदित कर पाते !

पंकज

सच कहते हो।
विक्षुब्ध, विकल हो उठता हूँ
मैं उन्हें देख !
मेरे अंतरके तार-तार बज उठते हैं,
वह चलती है आँखोंसे करुणाकी धारा !
लेकिन क्या करूँ,
विवश हूँ मैं !
ये पत्थर माँग रहे मुझसे आकार नये !
आकृतियाँ माँग रही मुझसे जीवन-स्पन्दन।
मैं कलाकार,
इनको निराश कैसे कर दूं ?

(मूर्ति गढ़ने की आवाज)

मन

लगता मुझको,
विक्षिप्त हो गये हो पंकज !
पाषाणोंकी वाणी तुम सुनते हो प्रतिक्षण,
लेकिन मोहनकी कातर ध्वनि
अंतरतक तनिक तुम्हारे नही पहुँच पाती ?

पंकज

मुझको अघात मत करो अधिक !
उनकी स्मृतियोंको सोने दो ओ मेरे मन !
मेरे अंतरको और न अधिक कुरेदो तुम !
मैं शिल्पी हूँ,
गढ़ रहा मूर्तियाँ जगके हित,
मेरी साधना न भंग करो
इन बातों से।

मन (हँसते हुए)

साधना !
साधना इसे तुम कहते हो !
तुम पागल हो !
तुम भाग रहे हो जीवनके संघर्षसे !
पाषाणोंके संग जड़-जड़
पाषाण हो गये हो तुम भी !

पंकज (आश्चर्य से)

क्या कहते हो ?
पाषाण हो गया हूँ मैं भी ?
तुम निष्ठुर हो,
तुम अन्तरकी उलझन न कभी हो सुन पाते।
देखो, मेरे उरमें

आकाक्षाएँ है जाग रही कितनी,
मेरी पलकोमे सपने उमड रहे कितने !
मेरी साँसे जगकी
मगल-कामना किया करती सदैव !
तुम कैसे कहते हो,
मैं भी पाषाण हो गया हूँ
इन पाषाणोके सँग ?
मेरे उरमे तो जाग रही
जीवन-विद्युत् इतनी सशक्त,
जो पाषाणोको भी
नवजीवन देती है,
चेतना नयी उनके प्राणोमे भरती है !

मन

आश्चर्य यही तो
होता है मुझको पकज !
तुम कहते हो,
कैसे निराश कर दूँ मैं इन पाषाणोको ?
लेकिन निराश करते अपनी प्रिय वेला को
तुमको न तनिक लज्जा आती !
है याद,
कौन-सी आशाएँ थी
जाग उठी उसके मनमे ?

(मधुर वाद्य-सगीतसे स्मृति-दृश्य प्रारभ होता है)

वेला—(हल्की हँसी)

पकज—वडी खुश हो वेला !

वेला—मैं खुश न होऊँ, तो दूसरा कौन होगा ?

पकज—आखिर बात क्या है ?

वेला—मुझसे खुशीकी बात पूछ रहे हो ? आज मुझसे सुखी दूसरी कौन नारी होगी !

पंकज—क्यो ?

वेला—"क्यो"का जवाब मै नही देती !

पंकज—जरा सुनूं भी।

वेला—तुम्हारे-जैसा कलाकार तो खुद समझ जाएगा।

पंकज—कलाकारकी पत्नी कह दे, तो अच्छी बात न होगी ?

वेला—तुम तो मुझे चिढाने लगते हो। तुम्ही बतला दो तो कैसा हो ?

पंकज—नही वेला, मै पहेली बूझना नही जानता। मै तो मूर्ति गढना जानता हूं, पत्थरकी मूर्त्ति !

वेला—एक मेरी मूर्ति नही बना दोगे ?

पंकज—तुम तो मेरी कलाकी प्रेरणा हो ! अपनी प्रत्येक मूर्त्तिमे मै तुम्हारी ही आत्माका संगीत भरता हूँ ! मै कितना प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जैसी जीवन-संगिनी पाकर !

वेला—यह तो तुम उल्टी बात कहते हो।

पंकज—उल्टी बात कहता हू ?

वेला—और नही तो क्या ? सुखी तो मै हूँ कि तुम्हारे-जैसे कलाकार-की पत्नी हूँ !

पंकज—पगली ! (हल्की हसी)

वेला—हसते क्यो हो ? मै झूठ कहती हू ?

पंकज—झूठ क्यो कहोगी वेला ! लेकिन मै सोच रहा हू कि क्या तुम हमेशा सुखी रह सकोगी ?

वेला—मै तुमसे ऐसी बाते नही सुनना चाहती। मेरा मन आशंकित हो उठता है। मै तुम्हारे साथ हू सदा सुखी रहूंगी !

पंकज—तुम मेरी बात नही समझी !

वेला—मै समझती हू। तुम कलाकार हो, शिल्पी हो ! मुझे तुम्हारी

प्रतिभापर, तुम्हारी शक्तिपर विश्वास है। मैं जानती हूँ, तुम मुझे दुखी नही होने दोगे।

पंकज—हाँ वेला, मैं तुम्हे दुखी नही होने दूँगा। तुम्हारे होठोकी मुस्कानके लिए मैं सब कुछ करूँगा।

वेला—तुम कितने अच्छे हो।

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

मन—(ज़ोरकी हँसी)

तुम कितने अच्छे हो पंकज। (हँसी)

पंकज

तुम हँसने आये हो मुझपर ?

मन

मैं हँसने नही यहाँ आया,
(व्यंग्यसे)
यह तुमसे कहने आया हूँ,
तुमने अपनी वेलाको सुखी बनाया है।
मुस्कान अधरपर खिलती रहती है उसके,
आँखे उसकी मुस्काती है,
हो सुख विभोर,
उल्लास-हासके गीत सदा वह गाती है।
तुम कितने अच्छे हो पंकज। (हँसी)

पंकज

मैं कहता हूँ,
मुझपर न हँसो अब और अधिक,
ओ मेरे मन।

मन

मैं हँसता नही तनिक तुमपर।
कुछ बीती बाते याद करा देता हूँ बस।
उन मधु-दिवसोकी स्मृतियाँ,

बोलो, कहाँ गयी।
बेलाकी पलकोंके सपने क्या कहते हैं ?
उसके मनका विश्वास
भला क्या हार गया ?
तुमने थे जो आश्वासन दिये कभी उसको,
वे पाषाणोंसे टकराकर क्या नष्ट हुए ?
क्या सचमुच ही
तुम देख नहीं पाते उसकी इच्छाओंको ?---
जो सिसक-सिसककर रोती है,
जो घुट-घुटकर मिट जाती है।

पंकज

बस, रहने दो ओ मेरे मन !
मैं सुन न सकूँगा और अधिक।
सोयी स्मृतियोंको जगा-जगा
मुझको अशान्त क्यों करते हो ?
मैं कलाकार हूँ,
मुझे साधना करने दो !
(मूर्त्ति गढ़नेकी आवाज)

मन

ठहरो पंकज !
भागो न अभी !
भागने नहीं दूँगा तुमको।
सोचो तो कुछ,
तुम पाषाणोंसे टकराना यह छोड़,
कहीं श्रम और दूसरा करते यदि,
धन-वैभव मिलता,
सुख मिलता,

जीवनमे हँसी-खुशी तब आकर लहराती,
वेला मुस्काती,
मोहन किलकारी भरता,
साधोकी कलियाँ खिल जाती।
कितना सुन्दर लगता यह जग।

पकज

रहने दो अब
ओ मेरे मन।
तुम दुनियाको रगीन बना
साधना-भ्रष्ट मुझको यो करने आये हो।
लेकिन मै अपने पथसे भ्रष्ट नही हूँगा।
है मुझे ज्ञात,
इस दुनियाकी यह चमक-दमक,
यह रगीनी,
सब नश्वर हैं, है क्षणिक, तुरत मिट जाएँगी।
मै नश्वरताके लिए
अमरताको न कभी भी खो सकता।

मन

यह बात अमरताकी
तुमने कैसी छेडी ?

पंकज

ओ मेरे मन,
तुम अधे हो,
तुम समझ न पाओगे सब कुछ।

मन

पत्थरके प्रेमी,
जरा मुझे समझाओ भी।

पंकज

जो रंग दिखाते हो मुझको
इस दुनियाके,
वे सबके सब धुल जाएँगे !
वेला न रहेगी,
रह न सकेगा मोहन भी,
औ, कलाकार पंकजकी
नश्वर देह कभी मिट जाएगी !
मिट जाएँगे,
जगके वैभव-ऐश्वर्य सभी !
मिट जाएगी
दुनियाकी सारी चमक-दमक !
लेकिन यह अनुपम कला-सृष्टि
जगके ध्वंसोपर भी सदैव मुस्काएगी !
युग-युग तक कलाकार पंकजकी
गौरव-गाथा गाएगी !
सब मिट जाएँगे,
वर्त्तमानके प्राणी हैं,
लेकिन यह मेरा कलाकार
है तोड़ रहा इस वर्त्तमानकी सीमाएँ
छेनीके निष्ठुर, निर्मम कुछ आघातोंसे !
आनेवाली सदियोंमें भी
यह कभी न मिटनेवाला है।
यह गौरव देख रहे हो तुम ?
देखो भी तो।

(वाद्य-संगीतसे नया स्मृति-दृश्य प्रारंभ होता है। वहाँसे लोगोंके जमीन खोदनेकी आवाज सुनायी पड़ती है।)

आदमी १—अरे भई, इतने जोरसे कुदाल न चलाओ।

आदमी २—क्यो ?

आदमी १—कही ऐसा न हो कि जिन मूर्त्तियोकी खोजमे हम मिहनत कर रहे हैं, वे हमारी कुदालकी ही चोटसे टूट जायँ।

आदमी २—हाँ, अभी-अभी तो यह छोटी-सी पत्थरकी मूर्त्ति मिली है।

आदमी १—इसीलिए तो कहता हूँ कि बडी मूर्त्तियां भी शीघ्र ही मिलेगी। अच्छा, जल्दी-जल्दी काम करो।

(कुदाल और फावड़े चलानेकी आवाज)

आदमी २—यह देखिए, एक नयी मूर्त्ति यह निकली।

आदमी १—कितनी सुन्दर है! मैं कहता हूँ, अभी और मूर्त्तियाँ निकलेगी। काम करो।

(कुदाल और फावड़े चलानेकी आवाज)

आदमी २—यह देखिए—एक नयी मूर्त्ति और निकली।

(कुदाल और फावड़े चलानेकी आवाज)

आदमी २—एक मूर्त्ति और!

आदमी १—इतनी मूर्त्तियाँ! कलाका अनुपम भडार पा लिया हमने! कितनी सुन्दर है ये!

आदमी २—इनकी कला तो देखिए! इनकी एक-एक रेखा बोल रही है! ये कितनी सजीव लगती हैं!

आदमी १—किसकी बनायी हुई है ?

आदमी २—नाम तो इस मूर्त्तिके नीचे खुदा हुआ है।

आदमी १—क्या नाम है ?

आदमी २—मूर्त्तिकार पकज!

आदमी १—मूर्त्तिकार पकज! तुम हमारी श्रद्धाके पात्र हो! हम तुम्हारे चरणोपर अपनी श्रद्धाजलियाँ अर्पित करते हैं!

आदमी २—आश्चर्य है कि हम ऐसे महान् कलाकारके विषयमे कुछ नही जानते थे। पता नही, यह किस युगका कलाकार है!

आदमी १—मूर्त्तियोपर सन्-सवत्‌का उल्लेख तो अवश्य होगा।

आदमी २—होना तो चाहिए।

आदमी १—जरा गौरसे देखो।

आदमी २—देख रहा हूँ। (जरा ठहरकर) यह तो किसी सन्‌का ही उल्लेख है।

आदमी १—पढो भी तो।

आदमी २—उन्नीस सौ पचास।

आदमी १—तो, इसमे सदेह नही कि मूर्तिकार पकज बीसवी सदीके पूर्वार्द्धमे रहा होगा।

आदमी २—उसकी कला गजबकी है। आज इतनी सदियोके बाद भी उसकी मूर्त्तियोमे इतनी शक्ति है कि ये हमारे मनको गुद-गुदा सके।

आदमी १—सचमुच वह महान् कलाकार था।

आदमी २—ये मूर्त्तियाँ हमारे गौरवकी वस्तु है।

आदमी १—इन्हे हम अपने म्यूजियममे ले चले।

आदमी २—हा-हाँ, हमे इनका सरक्षण करना चाहिए।

मन (जोर की हँसी)

पकज

क्यो हँसते हो
ओ मेरे मन?

मन

पागल सपने छल रहे तुम्हे।

पकज

पागल सपने?

मन

मै ऐसे सपनोको
पागल ही कहता हूँ।
ये निष्ठुर होकर छीन रहे है

तुमसे मधुमय वर्त्तमान ।
अमरत्व प्राप्त करनेके हित
तुम दौड रहे हो अधो-से अपने पथ पर ।

पंकज

क्या कहते हो ?
मै दौड रहा हूँ अधो-सा ?

मन

तुम देख नही पाते
जीवनके सपनोको,
जो वर्त्तमानकी धरतीपर
सामने तुम्हारे बिखरे है ।
तुम कहते हो,
ये वर्त्तमानके सुख-वैभव
सब नश्वर है,
चाहिए तुम्हे अमरत्व कही ।
मै कहता हूँ,
तुम भ्रममे हो ।
तुम खोज रहे अमरत्व यहाँ,
वह भी नश्वर, क्षण-भगुर है ।

पकज

वह भी क्षण-भगुर है कैसे ?

मन

तुम देख नही पाते उसको ?
तुम कहते हो,
बेला, मोहन मिट जाएँगे,
इस दुनियाके चमकीले रग धुल जाएँगे,
दस वर्षोमे सब चमक-दमक होगी मलीन ।

तुम अमर रहोगे
इन्ही मूर्त्तियोमे छिपकर !
मैं कहता हूँ,
ये कला-सृष्टियाँ भी
खंडित हो जाएँगी !

पंकज

कैसे खंडित होगी,
मैं समझ नही पाता !

मन (हँसी)

तुम समझोगे इसको कैसे ?
भ्रमका आवरण
तुम्हारी आँखोपर छाया।
क्या देख नही सकते
कि कभी तूफ़ान-बवंडर आएगे,
धरती डोलेगी,
आसमान थर्राएगा ?

(आँधी, तूफान, भूकंप आदिकी भयंकर ध्वनियाँ दूरसे धीरे-धीरे उठकर तेज हो जाती है। बहुत-से लोगोकी आवाजें सुनायी पड़ती हैं 'भागो, भागो' 'जान बचाओ' आदि)

पुरुष-स्वर १—अरे राकेश, तुम यहीं खड़े हो ?

पुरुष-स्वर २—और क्या करूँ ?

पुरुष-स्वर १—भागते क्यों नहीं ?

पुरुष-स्वर २—भागकर कहाँ जाऊँ ? देखते नहीं ? धरती डोल रही है, आकाश फट रहा है, काले-काले बादल छाए आ रहे है, आँधियाँ बढ़ती आ रही हैं, तूफ़ान उठता चला आ रहा है ! मालूम होता है, प्रलय आज ही होगा ।

पुरुष-स्वर १—तुम भी गजबके आदमी हो! यों खड़-खड़े प्रलयकी बातें सोच रहे हो!

पुरुष-स्वर २—जो सामने देख रहा हूँ, उसे सोच रहा हूँ। ये बड़े-बड़े आलीशान महल गिरकर चूर-चूर हो रहे हैं, धरती फट रही है, सभी ढह रहे हैं, ढह रहे हैं, आह!

(आवाज तेज होकर कम होती है)

मन (अट्टहास)
कलाकार पकजकी
सब मूत्तियाँ ध्वस्त हो जाएँगी! (हँसी)

पकज
इतना न हंसो ओ मेरे मन!
मैं पागल हो जाऊँगा सचमुच इन्हे सोच!

मन (हँसी)
मैं क्यो न हँसूं?
तुम खोज रहे अमरत्व यहाँ!
अमरत्व भला इस धरतीपर
मिल पाता है?
धरतीपर सब कुछ नश्वर है,
क्षणभगुर है,
आशकासे जीवनका
प्रतिक्षण कपित है!
तूफान-ववडर
उल्का-झझावातोका भय तो है ही,
सभव है,
जगके भले आदमी,
शाति चाहनेवाले नर
कुछ ऐटम वम भी वरसा दे!

(बहुत-से हवाई जहाजोंकी आवाज। विस्फोट, आह-चीत्कार आदिकी ध्वनियां)

मन (अट्टहास)
तव कलाकार पकजकी
ये मूत्तियाँ कही वच पाएँगी? (हँसी)
अमरत्व चाहनेवाले भावुक कलाकार! (हँसी)

पंकज

बस !
रहने दो, रहने दो,
हँसो न और अधिक
ओ मेरे मन !
सच कहते हो,
अमरत्व नही इस धरती पर !
भ्रम है, सब मिथ्या है !
मेरी साधना, कला-कौशल,
सब निष्फल है !
मेरी मूर्त्तियाँ सभी
खंडित हो जाएँगी !
मै रचकर इन्हे करूँगा क्या ?
प्रतिमे, तुझको मिटना ही है,
तो बनकर भला करेगी क्या ?

(पत्थर पर जोरसे हथौडा मारनेकी आवाज)

पंकज

आह् !
मैने यह क्या कर दिया आज ?
मेरी यह अनुपम कला-सृष्टि
हो गयी नष्ट मेरे हाथो !
मै पागल हूँ,
मै उलझ रहा हूँ, जाने क्यो,
अपने मनमे !
मैने अपनी प्रतिमा
खंडित कर दी पलमे !
यह प्रतिमा, मेरी कला-सृष्टि !
जिसके रचनेमे
मुझे आत्म-सुख मिलना था,
संतोष हृदयका होना था !
मै फिरसे कोई मूर्ति रचूंगा मनमोहक,
पत्थरमे ज्योति जगाऊंगा !

(वाद्य संगीतमे समाप्ति)

वे अभी भी क्वाँरी हैं !

(वाद्य सगीतसे दृश्य प्रारम्भ)

रेखा—रात वीत रही है मावव !

माधव—मेरी आँखोमे नीद नही है।

रेखा—मै कहती हूँ, अब सो जाओ।

माधव—नही रेखा, अभी मै नही सो सकता।

रेखा—न मालूम, तुम्हे कभी-कभी क्या हो जाता है।

माधव—हो क्या जाता है, यो ही कुछ सोचने लगता हूँ।

रेखा—मैं भी तो सुनूं, क्या सोच रहे हो !

माधव—तुम्हे क्या वतलाऊँ ?

रेखा—क्यो, मेरे जानने योग्य नही है ?

माधव—नही रेखा, जानने योग्य क्यो नही है, लेकिन मेरा मन कुछ अशात-सा है।

रेखा—यही तो जानना चाहती हूँ कि इस शातिकी वेलामे तुम अशात क्यो हो ?

माधव—अशात ! (हल्की हँसी) मै कालिदासके 'अभिज्ञानशाकुतलम्'की वात सोच रहा हूँ रेखा !

रेखा—तो इसमें अशात होनेकी क्या वात है ?

माधव—अशात होनेकी वात नही है ?

रेखा—(हल्की हँसी) कवि और कलाकार सचमुच पागल होते है, यह वात तो तुम्हे देखकर ही मान गयी हूँ माधव !

माधव—मैं पागल हूँ ? कालिदास पागल थे ! अन्यायी !

रेखा—तुम्हे क्या हो गया है मावव ?

माधव—कुछ नही, कुछ नही। आज मै विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

ठाकुरका एक निबंध पढ रहा था। उसकी पंक्तियाँ अभी भी मेरे कानोमे गूंज रही हैं। सुनती हो ?

रेखा—नही माधव !

माधव—वाह ! यह गूंजती हुई आवाज़ तुम नही सुनती ?

स्वर—संस्कृत-काव्योमे दो तपस्विनियाँ और हैं, जो हृदयको तपोवन बनाकर उसमे निवास करती हैं। वे हैं प्रियंवदा और अनुसूया। पतिगृह-गामिनी शकुन्तलाको विदा करके वे रोती-रोती लौट आयी। नाटकमें फिर उनका प्रवेश नही देखा गया, उन्होंने फिर हमारे हृदयोमें ही आसन जमा लिया !

माधव—सुनती हो रेखा ?

रेखा—क्या सुना रहे हो माधव ? मैं तो कुछ भी नही सुनती।

माधव—कुछ भी नही सुनती ? सुनो भी तो !

स्वर—शकुन्तलाके पतिगृह-गमनके बाद प्रियंवदा और अनुसूयाका क्या हुआ, यह बात शकुन्तला नाटकके लिए बिल्कुल ही अनावश्यक है, किन्तु क्या इसीलिए वह अकथित और अपरिमेय वेदना वहीपर शान्त हो गयी ? क्या वह हमारे हृदयमें बिना छन्द और बिना भाषाके ही सदा जाग्रत नही रहने लगी ?

माधव—यही तो मैं भी कह रहा हूँ रेखा !

रेखा—क्या कह रहे हो तुम ? मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं होता।

माधव—हुँह, तुम्हें क्या मालूम होगा ?

रेखा—तुम्ही रातभर मालूम करते रहो ! मुझे तो नींद आ रही है। मैं सो रही हूँ।

माधव—अच्छा रेखा, सो जाओ, मेरा भी मन जब शान्त होगा, सो जाऊँगा। (क्षणिक शांति के बाद) क्यो रेखा, सो गयी ? कालिदासने प्रियंवदा और अनुसूयाके प्रति सचमुच अन्याय किया है—अन्याय !

(धीरे-धीरे उठता हुआ स्वप्न-सूचक संगीत)

कल्पना—कलाकार माधव ! कलाकार !

माधव—कौन हो तुम ?

कल्पना—मै ? इमने तुम्हे क्या मतलब ?

माधव—तो, तुम मुझे पुकार क्यो रही हो ?

कल्पना—तुम्हे शान्ति देनेके लिए।

माधव—शान्ति ?

कल्पना—हां-हां, तुम अशान्त हो न ? मै तुम्हे शान्ति देने आई हूँ।

माधव—शान्ति दोगी ? कैसे ?

कल्पना—कैसे क्या वतलाऊँ ? तुम शान्ति नही चाहते हो क्या ?

माधव—चाहता क्यो नही ?

कल्पना—तो, आओ। शीघ्रता करो। मेरे साथ चलो। उड़ो। उड चलो। पीछे लौट चलो।

(शून्यमें उड़नेकी आवाज)

स्वर—१९००-१८७५-१८५७

(भीड़की आवाज)

कुँवरसिंह—यह विद्रोहका झडा खडा रहे, गिरने न पाये, जीत हमारी होगी!

स्वर—१८५०-१८३५-१८००-१७६०

विहारी—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि वानिक मो मन वसहु सदा विहारीलाल॥

कल्पना—वढते चलो कलाकार!

माधव—आ रहा हूँ देवि!

स्वर—१७२०-१७००-१६८८

तुल्सी—सिया राममय सव जग जानी।
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

कल्पना—माधव, और आगे वढो।

माधव—वढ रहा हूँ! क्या कहूँ, तुम्हें ?

कल्पना—कल्पना !

माधव—कल्पना !

स्वर—९९०-८८०-४००-३००

माधव—और कहाँ कल्पना ?

कल्पना—और नही कलाकार ! मैं तुम्हे शीघ्र ही रुकनेको कहूँगी।

माधव—वह कौन है वहाँ—उस पर्वत पर ?

कल्पना—वह यक्ष है, कालिदासका विरही यक्ष !

माधव—आषाढके मेघ आकाशमे घिर रहे है, यक्ष व्याकुल हो रहा है कल्पना ! चलो न वही।

कल्पना—नही माधव, मैं तुम्हे यक्षके पास नही, प्रियवदा और अनुसूयाके पास ले जाऊँगी।

माधव—कहाँ है वे ?

कल्पना—उन्हें ही तो देख रही हूँ। आगे बढो ! वह देखो, वहाँ, उस कुजमे !

माधव—तो, चलो न वही।

कल्पना—नही माधव, मैं वहाँ नही जाऊँगी।

माधव—तब ?

कल्पना—तब क्या ? तुम चले जाओ। फिर लौटकर आना, तो साथ चलेगे।

माधव—तुम क्यो नही चलती ?

कल्पना—मैं कहती हूँ, तुम जाओ, देर न करो। इच्छा होगी, चली आऊँगी।

(वाद्य सगीतसे दृश्य-परिवर्तन)

(चिड़ियोकी चहचहाहट आदिकी आवाज)

प्रियवदा—(निकट आती हुई) अनुसूया ! अनुसूया ! अरी पगली, मैं तुम्हें कबसे पुकार रही हूँ, तुम्हें कुछ सुनायी ही नही पडता ?

अनुसूया—सचमुच मुझे पुकार रही थी ?

प्रिय०—तुम्हे सुनायी दे, तब तो। कर क्या रही हो ?

अनु०—यही एक चित्र बना रही हूँ प्रियवदा !

प्रिय०—तुम्हारा तो मन चित्र ही मे लगता है। देखू, किनका चित्र है ?

अनु०—देखो न, यही तो है।

प्रिय०—यह तो किसी राजकुमारका चित्र है।

अनु०—हाँ प्रियवदा !

प्रिय०—बडा सुन्दर है ! इसकी आँखोसे कितनी मादकता बरस रही है !

अनु०—हाँ सखी !

प्रिय०—कैसे बनाया तुमने ? कही इस राजकुमारको देखा है क्या ?

अनु०—नही प्रियवदा, जहाँ तुम हो, वहाँ मै। देखूंगी कहाँसे ? महाराज दुष्यतके बाद इस उपवनमे दूसरा कोई राजकुमार आया ही कहाँ ?

प्रिय०—हाँ अनुसूया, सच कहती हो। देखते-देखते आँखे थक गयी, लेकिन इस उपवनमें कोई राजकुमार नही आया । मन करता है,

अनु०—क्या मन करता है सखी ?

प्रिय०—यही कि महाराज दुष्यत-जैसा ही कोई राजपुरुष हमारा अतिथि होता, तो हम उसका कितना सत्कार करती !

अनु०—लेकिन कोई अतिथि हुआ तो नही।

प्रिय०—यही तो सोचती हूँ अनुसूया, तुम कितनी भाग्यशालिनी हो !

अन०—मैं ? भाग्यशालिनी हूँ ? (हल्की हंसी)

प्रिय०—भाग्यशालिनी तो हो ही ! अपनी कल्पनाके ससारमे कभी किसी महाराजको, कभी किसी राजकुमारको बुला लेती हो, और उसे अपने चित्रपटपर उतार देती हो !

अनु०—यह तो चित्रकलाकी महिमा है प्रियवदा !

प्रिय०—तुम्हारी चित्रकलाकी निपुणता मै अभी भी नही भूली हूँ।

तुमने शकुन्तलाके विदाके समय अपनी चित्रकलाके बलपर ही उसे राजकीय वस्त्र पहनाये थे।

अनु०—हाँ सखी, उन दिनोंकी याद न दिलाओ। वे तो सपने-जैसे बीत गये, फिर लौटकर आनेवाले नही है!

प्रिय०—हाँ अनुसूया, मैं भी यही सोचती हूँ, वे दिन फिर एक बार आ पाते!

अनु०—मेरे मनमे भी उन दिनोंकी स्मृतियाँ मचल रही है प्रियवदा! उस दिन शकुन्तलाके मुखपर एक भौंरा मँडरा रहा था, और उसी समय महाराज दुष्यत उपवनमे चले आये।

प्रिय०—मैं तो उस भौंरेको कबसे खोज रही हूँ सखी! एक बार मेरे मुखपर भी मँडराता!

अनु०—लेकिन,

प्रिय०—लेकिन क्या, कुछ नही! लताओंको देखा, फूलोंके निकट गयी, लेकिन वह भौंरा कही न मिला!

अनु०—इन कल्पनाओंसे लाभ ही क्या है प्रियवदा?

प्रिय०—हाँ सखी, ये कल्पनाएं स्वप्न है, छलना है, इनमे उलझनेमे कोई लाभ नही। और, मैं भी कैसी बेसुध हूँ, क्या कहने आयी थी, क्या कहने लग गयी!

अनु०—क्या कहने आयी थी प्रियवदा?

प्रिय०—यही कि उठो, घड़ा उठाओ, लताओ और वृक्षोंको सींचनेका समय हो गया।

अनु०—ज़रा यह चित्र पूरा न कर लूं?

प्रिय०—नही अनसूया, शीघ्र उठो, पिता कण्व आयेंगे, तो क्या कहेंगे? और, यह माधवी लता हमारे स्नेह ही पर तो जीवित है। याद है न, शकुन्तला इसे हमे ही सौंप गयी थी!

अनु०—याद है सखी!

प्रिय०—लेकिन जाने दो अनुसूया ! चलो, [illegible]
क्या ?

अनु०—हा सखी, चलो, देखो न, माधवी [illegible]

प्रिय०—उठाओ घडा ।

(क्षणिक शान्ति, फिर पानी गिरनेकी आवाज)

अनु०—प्रियवदा, उस झुरमुटमे खडखडाहट [illegible]

प्रिय०—कोई मृग होगा । अच्छा सखी, मेरी [illegible]
जरा ढीली कर दे न !

अनु०—मैं क्या इसीलिए हूँ ? कभी शकुन्तलाकी [illegible]
थी, आज तुम्हारी कर दूँ ? अच्छा !

प्रिय०—देखो सखी, कोई आ रहा है क्या ?

अनु०—यह तो मै पहले ही कह रही थी ।

प्रिय०—शायद कोई अतिथि है ।

अनु०—सकोचमे आगे नही बढ रहा है । बुला लो ।

प्रिय०—आइए, चले आइए । कौन है आप ? क्या [illegible]
आपका ?

अनु०—आप बोलते क्यो नही ? आज्ञा दीजिए, आपकी क्या सेवा
की जाय ?

माधव—कुछ नही देवि, कुछ नही ! मुझे सेवा नही चाहिए । मैं
केवल आपके दर्शन चाहता था ।

प्रिय०—दर्शन ?

माधव—हाँ देवि, तुम्हे देखने हीके लिए कालकी लम्बी दूरी पारकर
चला आ रहा हूँ ।

अनु०—अहो भाग्य हमारे ! हमारे प्रति अभी भी किसीके हृदयमे
स्निग्ध भावनाएँ है ? किसीके मनमे हमे देखनेकी आकाक्षा
भी उठती है ?

माधव—क्यो नही अनुसूया ?

अनु०—अनुसूया ? तुमने हमारा नाम कैसे जान लिया अतिथि ?

माधव—क्षमा करो देवि, मै कबसे यही झुरमुटमे खडा तुम्हे देख रहा था, तुम्हारी बाते सुन रहा था !

प्रिय०—शायद तुम प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई भौरा हमारे मुखपर उड-उडकर हमे सताये, तब तुम हमारी रक्षाके लिए प्रकट हो !

माधव—नही देवि, मै तुम्हे यो ही देख रहा था। न जाने क्यो, तुम्हे देखकर मेरे मनमे एक कैसी करुण रागिनी बजने लगती है, मेरे तार-तार झकृत हो जाते है !

अनु०—अरे, तुम अभी खडे ही हो ? बैठो अतिथि, आसन ग्रहण करो। प्रियवदा, जा, कुटीसे कुछ फल-फूल ले आ।

माधव—नही प्रियवदा, इस सत्कारकी कोई आवश्यकता नही। मै तुम्हारे दर्शनसे ही तृप्त हो गया।

प्रिय०—तो आओ अतिथि, इस कदलीपत्रके आसनको सुशोभित करो।

माधव—यह स्थान तो शायद वही है, जहाँ दुष्यन्त बैठे थे ?

अनु०—हाँ अतिथि, यह तभीसे सूना है।

माधव—लेकिन अनुसूया, मै महाराज दुष्यन्तके आसनपर बैठने योग्य नही हूँ !

अनु०—ऐसा न कहो अतिथि, हम तो तुम्हे उन्हीके-जैसा समझती है।

प्रिय०—हाँ अतिथि, हम तुम्हे अतिथि कब तक कहें ?

माधव—लोग मुझे माधव कहते है।

प्रिय०—माधव !

अनु०—नाम तो बडा सुन्दर है !

प्रिय०—तुम्हे देखकर हमे लगता है, जैसे हमारे जीवन-काननमे भूल-भटककर सचमुच माधव चला आया हो !

माधव—तुम क्या कहती हो प्रियवदा ?

अनु०—प्रियवदा सच कहती है माधव ! तुम्हे देखकर मुझे इतना

आनन्द होता है कि क्या कहूँ। [illegible]
याद आ गयी हो।

माधव—तुम कितनी भावुक हो अनुसूया।

अनु०—भावुक। (हल्की हँसी) लेकिन [illegible]
अन्तरमें मचलती हुई भावनाओंको [illegible]। [illegible]
सहृदय हो।

माधव—मैं कवि हूँ अनुसूया।

प्रिय०—यह क्या कहा तुमने?

माधव—यही तो कि मैं कवि हूँ। क्यों? तुम्हारे [illegible]
छाया कैसे घिर आयी? तुम [illegible]

प्रिय०—हमें कवियोंसे भय लगता है माधव।

अनु०—वे बड़े निष्ठुर होते हैं।

माधव—यह क्या कह रही हो तुम?

प्रिय०—सच कह रही हूँ माधव।

अनु०—सुनी-सुनायी बात नहीं, अनुभवका सत्य है।

प्रिय०—कालिदास कवि थे।

अनु०—कवि ही नहीं, महाकवि थे।

प्रिय०—और, उन्होंने कितनी निष्ठुरता की है।

अनु०—हमें शाप दिया है।

प्रिय०—निष्ठुर शाप।

अनु०—दुर्वासाके शापसे भी कठिन।

प्रिय०—दुर्वासाने शकुन्तलाको शाप दिया था, शकुन्तला शापमुक्त
हो गयी।

अनु०—लेकिन कालिदासका शाप आज भी हमारे शीशपर मँडरा
रहा है।

माधव—कौन-से शापके विषयमें कह रही हो अनुसूया?

अनु०—नहीं देखते माधव ? वह देखो, आश्रमके चारो ओर महा-
शापकी काली रेखा खिची हुई है।

माधव—कैसी रेखा ? मैं तो नही देखता।

प्रिय०—नही देखते ? तुम भी कवि हो न ?

माधव—यह क्या प्रियवदा ?

प्रिय०—कालिदास निष्ठुर थे, उन्होने हमारी आशा-आकाक्षाओपर अग्निवर्षा की है !

अनु०—हमारी कोमल भावनाओकी कलियोको अपने निष्ठुर हाथोमे मसल दिया है उन्होने !

माधव—हाँ, यह तुम सच कह रही हो। मैं भी यही कहता हूँ।

प्रिय०—हाँ, तुम सहृदय हो, सरल हो ! हमारी आशाओके मूर्त्त-मान रूप हो !

अनु०—हाँ माधव, कालिदास निष्ठुर थे, लेकिन सब तो एक-से नही होते। तुम कितने सुन्दर हो ! कितने सरल ! कितने सहृदय !

माधव—तुम्हारे स्नेहकी वर्षासे मै भीगा जा रहा हूँ। लेकिन, लेकिन इतनी वर्षा उचित नही है, उचित नही है अनुसूया !

अनु०—उचित नही है ! उचित क्या है ? अनुचित क्या है ? कुछ नही, कुछ नही !

प्रिय०—तुम कितने सरल हो माधव ! तुम निष्ठर नही हो सकते ! मै जानती हूँ, तुम हमे मुक्त करने आये हो, कालिदासके शापसे मुक्त करने !

अनु०—मै जानती हूँ, तुम हमे इस आश्रमसे मुक्त करने आये हो ! तुम हमे इस आश्रमसे, इस वदीगृहसे वाहर ले चलोगे, हमारी आशा-आकाक्षाओपर, हमारे स्वप्नोपर मधुकी वर्षा करोगे !

माधव—वोलो अनुसूया, मै क्या करूँ ? कुछ समझ नहीं पाता। प्रियवदा, वोलो।

प्रिय०—तुम कवि हो, सहृदय हो, तुम स्वय समझते हो, मैं क्या कहूँ ?

अनु०—हमें इस बंदीगृहसे बाहर पहुँचा दो माधव ! [illegible]
इच्छाएँ घुट-घुटकर मिटती जाती है !

प्रिय०—शीघ्रता करो माधव !

माधव—क्या करूँ मैं ?

अनु०—ले चलो, हमें यहाँसे बाहर ले चलो, [illegible] !

प्रिय०—तुम सोच क्या रहे हो ? सोचनेका समय नहीं !

माधव—तो, चलो, लेकिन कोई पुकार रहा है क्या ?

प्रिय०—शायद पिता कण्व है !

अनु०—क्या कह रहे है वे ?

बहुत-से स्वर—(गूंजती हुई तेज आवाज में) ये क्वाँरी हैं, इनका नगरमे जाना उचित नही है ! ये क्वांरी हैं, इनका नगरमे जाना उचित नहीं है ! ये क्वांरी हैं, इनका नगरमें जाना उचित नही है ! ये क्वांरी हैं, इनका नगरमे जाना उचित नही है !

(तीव्र वाद्य संगीतसे समाप्ति)

सहायक ग्रंथोंकी सूची

1. The Right Way to Radio Playwriting by Val Gielgud.
2. The Radio-Play: Its Technique and Possibilities by Felix Felton.
3 A guide to Radio Writing by W. Grifith.
4 Radio Plays & How to Write Them by Charles Hatton
5 Radio Theatre: edited by Val Gielgud
6. You're on the air by Lionel Gamlin.
7. The Film Sense by Sergei M Eisenstein.
8. How to Write for Radio by James Whipple.
9. The Stuff of Radio by Lance Sieveking,
10. Christopher Columbus by Louis Macneice.
11. The Dark Tower and Other Broadcast Plays by Louis Macneice
12. 100 Non-Royalty Radio Plays : compiled by Kozlenko
13. 5 Radio Plays : Introduction by Val Gielgud
14 Aspects of Broadcasting in India: A symposium (Publications Division, Ministry of Information & Broadcasting, Delhi)
15. B. B. C Quarterly.

संस्मरण-रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखा-चित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन-जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम ए	४)
कालिदासका भारत [भाग १]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
कालिदासका भारत [भाग २]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
हिन्दी जैन-साहित्य का सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२।।।=)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण [सामुद्रिक शास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

विविध

द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथसिंह विनोद	२।।)
जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
रजतरश्मि [एकांकी नाटक]	डॉ रामकुमार वर्मा	२।।)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोरसिंह	४)
हिन्दू-विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगंगा [सूक्तियां]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
रेडियो-नाट्य-शिल्प	श्री सिद्धनाथकुमार एम ए	२।।)
शरत् के नारीपात्र [आलोचनात्मक]	प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४।।)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस



लेखक

जन्म—श्रावण पूर्णिमा, वि० स० १६८४ ।
स्थान—सहनीपट्टी बक्सर [विहार] ।
शिक्षा—बी० ए० [हिन्दीमे ऑनर्स], एम० ए० [हिन्दी]। पी० एच० डी० उपाधिके निमित्त हिन्दी-नाटकके क्षेत्रमे अनुशीलन ।
लेखन—सन् १६३६ में लेखन प्रारभ-कविताओं और कहानियोका, वादमे नाटक और समीक्षात्मक निवधोका । सन् १६५१ मे 'कवि' गीतिनाटच तथा सन् १६५४ मे रेडियो-काव्य-नाटकोका सग्रह 'सृष्टिकी साझ और अन्य काव्य-नाटक' प्रकाशित ।
रेडियोसे सबध—सन् १६४८ मे रेडियो-नाटक-लेखन प्रारम्भ । अप्रैल १६५२ मे ढाई वर्षो तक आल इडिया-रेडियोके पटना केन्द्रमे नाटक-लेखक । सन् १६५४ मे व्हॉयस आफ अमेरिका वाशिगटनकी हिन्दी-सर्विस द्वारा आयोजित रेडियो-रूपक-प्रतियोगितामे एक रूपक सर्वश्रेष्ठ स्वीकृत एव पुरस्कृत ।
प्रिय विषय—काव्य, नाटक, आलोचना, दर्शन, मनोविज्ञान, जीवन-चरित्र सस्मरण ।

